योगविद्या

वर्ष 2 अंक 11
नवम्बर-दिसम्बर 2013
सदस्यता डाकखर्च – रु 50

स्वर्ण जयन्ती

बिहार योग विद्यालय
के 50 वर्ष

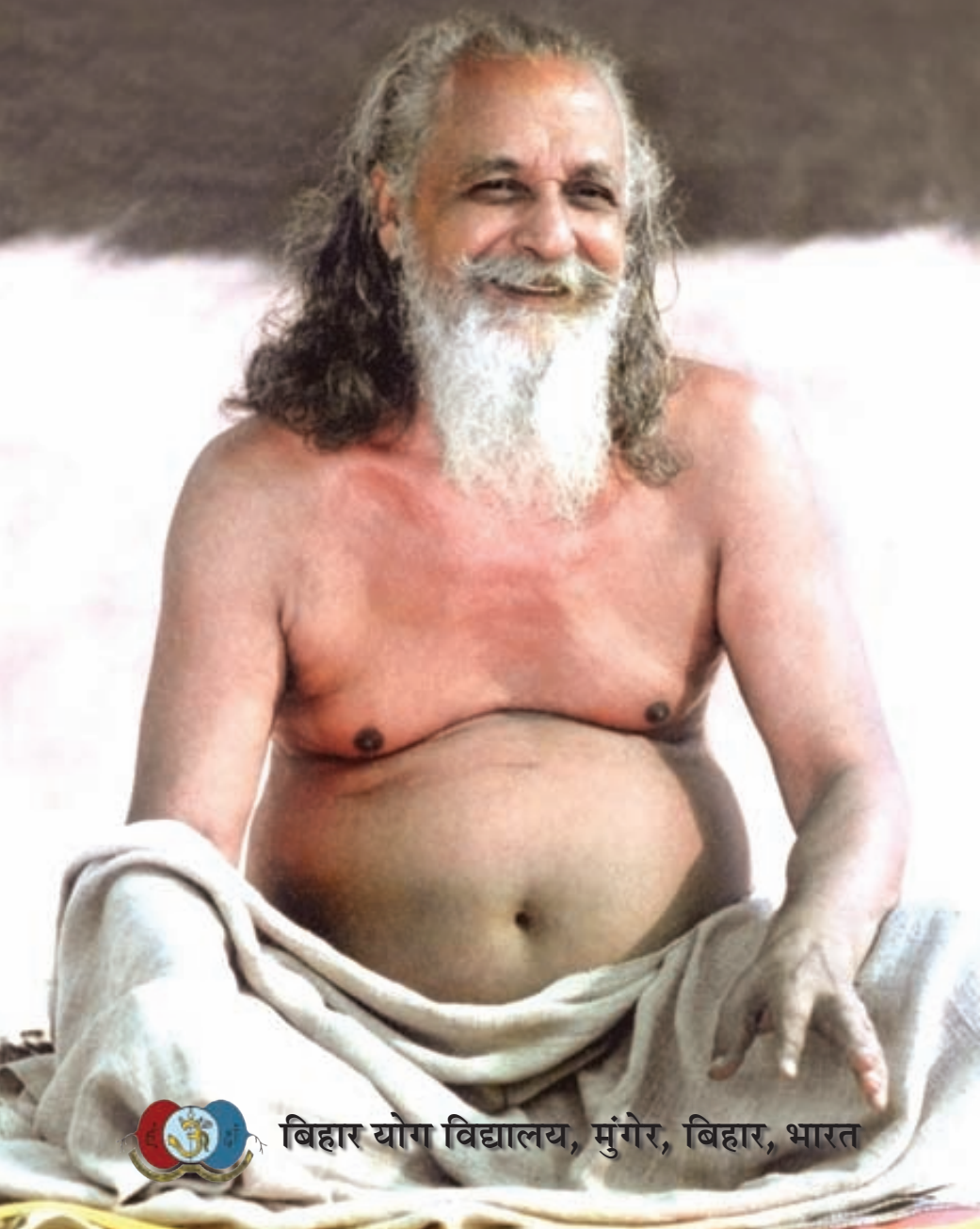

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2013

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कवर फोटो : श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, रिखियापीठ, 1995

अन्दर के रंगीन फोटो : 1-8: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

प्रार्थना की महिमा

शरीर के लिए प्राण-तत्त्व जितना आवश्यक है, उतनी ही आत्मा के लिए प्रार्थना भी आवश्यक है। प्रार्थना जीवात्मा का परमात्मा के साथ ऐक्य कराती है। प्रार्थना व्यक्ति के अहं को विगलित कर उसकी आत्मा को प्रकाशित करती है।

इसलिए प्रार्थना करो, चिन्तन करो और श्रद्धा एवं प्रेम भरे हृदय से प्रभु का स्मरण करो। एक अच्छा मनुष्य बनने के लिए प्रार्थना करो। पूर्णतया परमात्मा की शरण ग्रहण करो।

प्रार्थना के लिए बुद्धिमत्ता या विलक्षणता आवश्यक नहीं। भगवान केवल भक्तिभाव चाहते हैं। एक अनपढ़ व्यक्ति की आत्मा से निकले विनम्र शब्द परमात्मा को एक विद्वान् वक्ता या पण्डित के धारा-प्रवाह प्रवचनों की अपेक्षा ज्यादा भाते हैं।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 1 अंक 11 · नवम्बर– दिसम्बर 2013
(प्रकाशन का 50 वाँ वर्ष)

योग विद्या का यह विशेषांक श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित है, जो 5 दिसम्बर, 2009 की मध्यरात्रि को महासमाधि में लीन हुए। इस अंक में श्री स्वामीजी की रचनाओं एवं सत्संगों तथा उनके शिष्यों, भक्तों एवं प्रशंसकों द्वारा अभिव्यक्त श्रद्धांजलियों का संकलन है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है

जनता में – हे जनार्दन! मैं तुझे देखता हूँ।
दु:खियों में – हे दरिद्रनारायण! मैं तेरा दर्शन करता हूँ।
बालकों में – हे बालगोपाल! मैं तेरी निर्दोषता निहारता हूँ।
अत्याचारियों में – हे क्षमावतार! मैं तेरा क्षमास्वरूप देखता हूँ।
संतों में – हे सत्य स्वरूप! मैं तेरा सनातन सौंदर्य पाता हूँ।
मानव हृदयों में – हे प्रेम सागर! मैं तेरा पय: पान करता हूँ।
सतियों में – हे सत्यनिष्ठ! मैं तेरी शील – संरक्षण शक्ति पाता हूँ।
नश्वर विश्व में – हे अविनश्वर! मैं तेरी नित्यता पाता हूँ।
संसार रंगभूमि में – हे नटनागर! मैं तेरी अनुपम कला से मोहित हो जाता हूँ।
माया मोह में – हे निर्मोही! मैं तेरी निर्ममता सीखता हूँ।
वेदशास्त्रों में – हे अगम्य! मैं तेरा ज्ञानामृत पीता हूँ।
भुवनभास्कर में – हे ज्योतिर्मयी! मैं तेरी अपरिमित तेजोराशि पाता हूँ।
चन्द्रमा में – हे अमृतदेव! मैं तेरी शीतलता पाता हूँ।
प्रकृति में – हे सौंदर्यविधाता! मैं तेरे शृंगार पर मुग्ध बन जाता हूँ।
देश, काल और परिस्थिति में–
हे अमरेश! मैं तेरा अबाधित और अपरिवर्तनशील रूप देखता हूँ।
हे ईश्वर! जड़-चेतन में, दृश्य-अदृश्य में –
मैं तुझे विहार करते देखता हूँ।
तेरे ही गीतों की गुंजार सुनता हूँ।
तेरे ही सौंदर्य को निखरते देखता हूँ।
तेरे ही सामीप्य का सदा अनुभव करता हूँ।

योग-वेदान्त, दिसम्बर 1955

उड़ जा पंछी मौत से दूर

मानव है एक पंछी और उसकी उड़ान है जीवन। जीवन की उड़ान से ऐ मानव, तू मौत रूपी उत्तुंग, भयानक और विकराल पर्वतश्रेणी को पार कर ले। तू शिव और शक्ति को आत्म-समर्पण कर दे। वे तुझे आत्मशक्ति देकर तेरे डैनों में अगाध शक्ति भर देंगे। फिर न तू जीवन से थक जायेगा, न मौत से हार खायेगा। तू अविरत गति से ईश्वर के उन्मुक्त साम्राज्य में विचरण करता रहेगा, अनंत युगों तक अमरत्व के अमृतमय उत्संग में खेलता रहेगा। आ, मैं धीरे से, आहिस्ता से तेरे कानों में जीवन का महामंत्र फूकूँगा– वह मंत्र है 'त्याग'।

स्वेच्छापूर्वक आत्म-समर्पण करने का नाम है त्याग। यही है परम पवित्र एवं उच्च आदर्श और श्रेष्ठ भावना। यही है परम कर्त्तव्य। फिर भावना श्रेष्ठ या कर्त्तव्य, इस प्रश्न का स्थान ही कहाँ? त्याग के इस भावनामय कर्त्तव्य से और कर्त्तव्य-भावना से हमें जीवन को पूर्णतया बदल देना है। त्याग के चरणों में हमें प्रेमपूर्वक अपना सारा जीवन न्यौछावर करना है। त्याग में प्रेम सन्निहित है और प्रेम का प्रोज्ज्वल स्वरूप ही त्याग है। त्याग विवेकपूर्ण होना चाहिए। अंधविश्वास से किया गया त्याग क्या त्याग है? त्याग का घमण्ड त्यागी के हृदय की कालिमा है। 'अपने सर्वस्व का मैं बलिदान दे रहा हूँ' इस भावना का स्वप्न में भी प्रवेश त्यागी की लघुता का सूचक है। जिस सिद्धान्त को जीवन में अपनाया, जिस महानुभाव को जीवन समर्पित किया, उनके प्रति मरते दम तक और जब तक जन्म लेना पड़े, तब तक वफादार रहना और उसमें किसी भी प्रकार की बाधा पहुँचाने वाले तमाम तत्त्वों से सदा दूर रहना, यही है सच्चा त्याग। त्याग के गौरव-गरिमा को जानने के लिए त्यागी के दिल में शोक और व्याकुलता नहीं, आनंद और उल्लास चाहिए।

त्यागी को तलवार की तरह अपना जीवन बिताना चाहिए। तलवार को जीवन का आदर्श समझकर उसकी तरह जीवन समर्पण करना चाहिए। तलवार एक बार जिसके हाथों में जाती है, उसका वह कभी विरोध नहीं करती। वह इसको अच्छी तरह से जानती है कि उसका आदर-निरादर सब कुछ मालिक के ही हाथों में है। अत: मालिक के हाथों में जाकर उसका वह विरोध नहीं करती। अपने टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भी वह आह तक नहीं भरती। यही तो है त्याग। स्वेच्छा से किया हुआ आत्म-समर्पण ऐश्वर्य के समान भोगा जा सकता है, किन्तु ऐश्वर्य के भोग का फल है दु:ख और आत्म-समर्पण का फल है सुख। पहले में गर्व है और दूसरे में गौरव। किसी कवि ने लिखा है कि...

मत हो विरक्त जीवन से,
अनुरक्त न हो जीवन पर।

हमारा जीवन ऐसा ही होना चाहिए। संसार के सुख-भोगों के मध्य में रहते हुए भी हमें उनसे निर्लिप्त रहना चाहिए। हमें संसार से भागना नहीं है, सांसारिकता से भागना है। प्रलोभनों से भागना नहीं है, किन्तु उन्हें पराजित करना है।

संसार से या संसारी से घृणा करना या कठोरता दिखलाना त्याग नहीं है। अनुरक्ति और विरक्ति का मध्यम मार्ग ही त्याग है। राग को वस्तु या व्यक्ति विशेष में सीमित न रख कर समान रूप से विभाजित करने का नाम है त्याग।

त्याग द्वारा हमें कुटुम्ब के बंधन को, समाज के बंधन को और दुनिया के बंधनों को काटना है। सुख-वैभव रूपी लौह-शलाकाओं के संसार-पिंजड़े को तोड़कर उड़ जाना है, अमरता के गीत गाने, स्वतंत्रता का आस्वादन करने, दूर दूर, बहुत दूर विशाल वन में जहाँ सब कुछ अनंत ही अनंत है। 'उड़ जा पंछी मौत से दूर' के परम पवित्र मंत्रोच्चारण के साथ प्रयत्न करते रहना है, जब तक हम वहाँ पहुँच न पाएँ।

दुःख की मीमांसा

आयुष्मान ने जब भगवान बुद्ध से प्रश्न किया था कि संसार दुःखी क्यों है, तब भगवान बुद्ध ने एक बुढ़िया का उदाहरण देते हुए समझाया, "एक बार गौतमी नाम की एक बुढ़िया ने मेरे पास आकर कहा, 'हे भगवन्, मेरा एकलौता बेटा मर गया है, उसे जीवनदान दो।' मैंने कहा, 'हाँ, मैं तुम्हारा दुःख अवश्य दूर कर सकता हूँ, यदि तुम इसके उपाय के लिए जो चीज मुझे चाहिए वह ला दो। थोड़ी सरसों चाहिए, वह मुझे ला दो। मैं उसे मन्त्रोच्चारण से पवित्र कर दूँगा और फिर तुम्हारा बेटा सजीव हो जायेगा।' गौतमी ने सोचा इसमें कौन-सी बड़ी बात है। वह उठकर चलने लगी। मैंने उसे रोककर कहा, 'सुनो, मुझे तो उस घर की सरसों चाहिए, जिस घर ने कभी मातम न मनाया हो, जहाँ कभी दुःख और मृत्यु ने प्रवेश न किया हो।' बेचारी गौतमी सारे नगर में घर-घर घूमी। किसी ने कहा कि मेरा पिछले साल ही पुत्र मर गया है। किसी ने कहा, 'बहन, चाहे जितनी सरसों ले लो किन्तु मेरे पति हाल में स्वर्गवासी हुए हैं।' एक भी घर ऐसा न मिला जिसमें कभी भी मातम न मनाया गया हो। वह वैसी ही व्यथित दशा में मेरे पास आई। मैंने उसे धीरज देते हुए कहा, 'माँ, इस दुनिया में एक भी घर ऐसा नहीं है, जहाँ मृत्यु ने अपना हाथ न रखा हो। जरा, दुःख और मृत्यु तो प्राणी मात्र के लिए है ही। संसार में ऐसा कोई भी युग नहीं रहा जबकि व्यक्ति को दुःख न हुआ हो।"

दुःख का कारण

मनुष्य को दुःख क्यों? मनुष्य को यदि संसार की वस्तुओं के होने से आसक्ति और मोह होता है तो इसके न होने से उसे व्यथा और दुःख होता है। मनुष्य के दिल में यदि किसी वस्तु के लिए आसक्ति नहीं तो वस्तु के अभाव में उसे दुःख भी नहीं होता। हम आज अखबारों में पढ़ते हैं कि कई आदमी मर गये। हमें क्या लेशमात्र दुःख होता है? नहीं। क्यों हमारी आँखों से आँसू नहीं बहते? इसलिए कि हमें उनसे आसक्ति नहीं है। किन्तु एक बात का अवश्य ख्याल रखना है कि अगर कोई कोमल दिल का व्यक्ति होता तो उसे दूसरों को देखकर अवश्य रोना आ जाता है। उसका हृदय करुणाद्र हो उठता है। जिस प्रेम, मोह और आसक्ति के कारण हम दुःखी होते हैं, उसी प्रेम, मोह और आसक्ति को यदि हम सारे संसार की ओर व्यक्त करें, तो हमारा दुःख हवा हो जायेगा। इसमें त्याग की भावना है। इस त्याग का अर्थ घर छोड़कर भाग जाना नहीं है। किन्तु अपनी सहानुभूति का सभी के प्रति समान रूप से विभाजन करने का नाम है त्याग। हमारे ऋषि-मुनियों ने भी बार-बार त्याग का उपदेश दिया है।

वैराग्य और भोग

यदि वैराग्य ने समाज का बन्धन तोड़ना चाहा तो उसमें कुछ बुरा नहीं था। फिर भी नैतिक दोषारोपण किया जाता है कि वैराग्य ने समाज को निर्बल बना दिया है। वैराग्य ने यदि समाज को निर्बल बना दिया है तो क्या भोग और राग ने संसार को प्रबल बना दिया है? हमारे देश में जो आज थोड़ा भी धर्म, मनुष्यत्व आदि है, उसका श्रेय वैराग्य को ही है। प्राचीन काल के ग्रीस या रोम की आज हालत देखिए। कुछ मुठ्ठी भर आदमी तो रह गए हैं। कहाँ गई उनकी सभ्यता? आज भारत की सभ्यता देखिए। भारत के गौरव की अक्षुण्णता है उसकी त्यागमय संस्कृति।

जो त्याग करने योग्य है उसका त्याग करो। बुरी बातों का, बुरे विचारों का और बुरे कर्मों का त्याग करो। अच्छी बातें, अच्छे विचार और अच्छे कर्म अपनाओ। इसीलिए जब-जब भगवान बुद्ध से यह प्रश्न पूछा जाता था कि मनुष्य को दु:ख क्यों मिलता है, तब एक ही जवाब मिलता था – आसक्ति।

हमारी सामाजिक परिस्थिति ही ऐसी होती है कि हम दु:ख में फंस जाते हैं। लेकिन उन कष्टों से मुक्ति पाना हमारा दायित्व है। परिवार में ही जो हमारा कर्त्तव्य, करुणा, आसक्ति और प्रेम सीमित है, उसके स्वाद का आनंद हम दूसरों को क्यों नहीं देते? संसार में सभी को यह बात ठीक तरह से समझ लेनी चाहिए कि कष्ट का कोई निवारण नहीं होता। बोलिए, आज कितने दु:खों का निवारण हुआ है? दु:ख की रचना तो होती ही रहेगी। एक व्यक्ति दु:खों की लहरों को काट कर अपना मार्ग बना लेता है जबकि दूसरा व्यक्ति दु:खों के भँवर में फँस कर नष्ट हो जाता है। कठिनाई और दु:ख का इतिहास सुयश का इतिहास है। क्योंकि कष्ट काराओं को सहकर ही हम जीवन के आध्यात्मिक पथ को चुनते हैं। जीवन को जब हम आध्यात्मिक बना देते हैं, तब दु:ख के भँवर से हमें छुटकारा मिलता है।

अखण्ड सुख

यो वै भूमा तत्सुखम् नाल्पे सुखमस्ति... आज गुलाब के पुष्प में सुगंध आती है, किन्तु कल क्या होगा? क्या कल भी वही फूल वैसी-की-वैसी सुगंध देगा? नहीं, वह नश्वर है। हमें तो ऐसा सुख चाहिए जो शाश्वत रहे। बड़े-बड़े महल या साम्राज्य मिलें, किन्तु सुख न मिले तो क्या फायदा? जब तक सुख किसी वस्तु पर निर्भर है तब तक वह क्षणिक है। एक बार आम्रपाली ने अपने पुत्र बाल श्रमण से पूछा, 'बेटा, तुम मेरे साथ रहोगे? तुम सुखी रहोगे और जब तुम बड़े हो जाओगे, फिर मैं तुम्हारा ब्याह करूँगी, फिर ऐसा होगा, वैसा होगा।' बालक पूछता गया, 'इसके बाद? इसके बाद?' अन्त में वह न बता सकी। तब बालक ने कहा,'अन्त में आएगी जरा और मृत्यु। मैं तो ऐसा सुख चाहता हूँ जो शाश्वत हो।' तब आम्रपाली निरुत्तर हो गई।

सुख कहाँ? मनुष्य बचपन में खिलौने और मिठाई से प्यार करता है, जब युवक बनता है तब कंचन, कीर्ति और कामिनी को पसंद करता है, प्रौढ़ावस्था में बच्चे और वृद्धावस्था में फिर से युवा होने की तमन्ना करता है। मौत का जब पैगाम मिलता है तब जीवन के लिए तड़पता है। कामनाओं की शृंखला का कहाँ अन्त? जिसे कामना होती है वे शंकराचार्य के बतलाये हुए सत्य को समझें –

आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं
प्रत्यायान्ति गता: पुनर्न दिवसा: कालो जगद्भक्षक:।
लक्ष्मीस्तोयतरंगभंगचपला विद्युच्चलं जीवितम्
तस्मान्मां शरणागतं शरणद त्वं रक्ष रक्षाधुना॥

जीवन के दु:ख का स्रोत है एषणा और सुख का स्रोत है त्याग।

महान् आश्चर्य

पाण्डवों की एक कहानी है। जब वे जंगल से जा रहे थे, तब उन्हें प्यास लगी। वे पानी की खोज में चले। वहाँ एक तालाब था। किन्तु वहाँ पानी पीने से पूर्व यक्ष के प्रश्न का उत्तर देना पड़ता था। नकुल, सहदेव, भीम और अर्जुन वहाँ गए; किन्तु कोई भी वापस नहीं लौटा। तब धर्मराज गए। यक्ष ने धर्मराज को पानी पीने के पहले कुछ प्रश्नों के उत्तर देने के लिए कहा। पहला प्रश्न था कि इस संसार में सबसे महान् आश्चर्य क्या है। युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, 'हर रोज लाखों की संख्या में लोग मर रहे हैं फिर भी मनुष्य अपने आपको अमर समझता है। यही सबसे बड़ा आश्चर्य

है।' एक सर्प के मुँह में फँसा हुआ मेंढक मक्खी को पकड़ने का प्रयास करता है। लोग बड़ी-बड़ी इमारतें बनवाते हैं और जब भूचाल के एक ही प्रकोप से या किसी दूसरे कारणवश वे गिर जाती हैं, तब अफसोस करने लगते हैं। इसीलिए हम यह दुहराते हैं कि भगवान ने जो कुछ दिया है उसका उपयोग निष्काम भाव से किया जाए। *'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय इदं शरीरम्'* ऐसी भावना बनानी चाहिए और इसीलिए योगियों को शरीर की ओर भी ध्यान देना पड़ता है।

बालि की मृत्यु से व्याकुल तारा को देखकर श्रीराम कहने लगे – 'तुम शोक से सम्पीड़ित क्यों हो? यह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है और जीव तो नित्य है; फिर किसके लिए रोती हो?' इससे हमें सीखना है कि सभी के लिए मृत्यु निश्चित है। अत: शोक वृथा है। किन्तु अपने जीवन में भोगने वाले दु:खों को हम तभी मिटा सकते हैं जब हम अपने आनंद और सुख-भोग के लिए दूसरों का शोषण करना छोड़ दें; दंभ और पाखण्ड का त्याग कर सरल जीवन अपनाएँ। आज एक ओर हम दुराचार करते रहते हैं और दूसरी ओर आध्यात्मिकता की बातें। इससे पापों का नाश थोड़े होता है। एक ओर पाप और दूसरी ओर धर्म-कर्म! मिट्टी के फूटे हुए घड़े में लाख बार तुम पानी भरने का प्रयत्न करो किन्तु कभी भी सफल नहीं होओगे। धर्म का भी इसी प्रकार हम जीवन में आचरण करते हैं। हम समझते हैं कि धर्म-कर्म से हमें पुण्य होगा और हमारे पापों का प्रक्षालन हो जाएगा। धर्म-कर्म से पुण्य भले ही होता हो, किन्तु पापों का प्रक्षालन तो नहीं होता। किए हुए पापों का फल अवश्य ही भुगतना पड़ता है। फिर हम ऐसे पापाचार से दूर क्यों न रहें?

साधना करो! साधना करो!

आज हम उपदेश सुना रहे हैं और आप सुनते जा रहे हैं, किन्तु जो व्यक्ति एक कान से यह बात सुन उसे अपने हृदय में अंकित कर लेता है, वही उत्तम कोटि का श्रोता है। इस सिद्धांत को श्री स्वामी शिवानन्द जी ने 'जीवन में सफलता के रहस्य' पुस्तक में 'तीन खोपड़ियों की कहानी' द्वारा बहुत ही सुन्दर ढंग से समझाया है।

एक दिन राजा विक्रमादित्य के दरबार में एक राक्षस तीन खोपड़ियाँ लेकर आया और कहने लगा – हे राजन्! अपने दरबार के पण्डितों को कहिए कि इन तीनों में सबसे सुन्दर और उत्तम खोपड़ी को छाँट लें। यह कार्य एक सप्ताह के अन्दर होना चाहिए। एक सप्ताह में यदि नहीं हुआ तो मैं अवश्य प्राण हर लूँगा।

विक्रमादित्य ने इस चुनौती को स्वीकार किया और पण्डितों के सामने फिर से वह बात दुहराई। राजाराम नामक पण्डित ने सभी को आश्वासन देते हुए कहा कि वह अवश्य उत्तम खोपड़ी छाँट सकेगा।

सातवें दिन जब वह राक्षस दरबार में उपस्थित हुआ तब राजाराम ने कहा – जिस खोपड़ी में एक कान से दूसरे कान तक लोहे की शलाका निकल सकती है वह निकृष्ट

है। जिस खोपड़ी में श्लाका एक कान से दूसरे कान में नहीं निकलती, किन्तु मुंह के रास्ते निकल जाती है, वह मध्यम कोटि की है। और जिस खोपड़ी में लोहे की शलाका एक कान से हृदय तक पहुंच जाती है वही खोपड़ी तीनों में सर्वोत्तम है। इसका अर्थ यही हुआ कि सर्वोत्तम व्यक्ति वही है जो व्यवहारपरायण हो। हमें व्यवहारपरायण होना ही पड़ेगा, क्योंकि कर्म तो बीज की तरह है। कर्म होते ही उसके बीज अंकुरित होने लगते हैं और यथासमय फिर उसका फल भी मिलता है।

कष्ट या नयन-अंजन

पूर्ण बनना अत्यन्त मुश्किल है और जब तक हम पूर्ण नहीं बनेंगे तब तक कर्म और उसके फल इत्यादि का चक्कर चलता ही रहेगा। जब तक यह चक्कर चलता रहेगा तब तक कष्ट भी हम पाते रहेंगे। हमें प्रेमपूर्वक कष्ट का स्वागत करना चाहिए, क्योंकि कष्ट द्वारा ही तो हमारे मन के कलुष और दुर्विचार दूर होते हैं। जिन लोगों के जीवन में कष्ट आते हैं वे प्राय: धर्म और सात्त्विक पथ पर प्रयाण करना आरम्भ कर देते हैं।

जीवन में कष्ट के आने से ही तो वीरता, शौर्य, सहनशक्ति और धैर्य का महत्त्व है। जीवन की महत्ता भी कष्ट को सहते हुए आगे बढ़ने में है। कष्ट की भी सीमा होती है। भले हमारे जीवन में अनेक कष्ट आएँ किन्तु उन कष्टों से हमारी आँखें खुलनी चाहिए। कष्ट से आँखें फोड़कर यदि हम अन्धे बन गए तो क्या फायदा?

कष्ट से यदि कुछ शिक्षा पानी है तो हमें वस्तुओं और घटनाओं के आन्तरिक स्वरूप को जानने का, उनके रहस्य को समझने का प्रयत्न करना है। जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण में संपूर्ण परिवर्तन होना चाहिए। जीवन के परिवर्तन का श्रीगणेश साहस, स्वार्थ-त्याग और सदाचार से करो। सम्पीड़ित और व्यथित मानवों के कष्ट निवारण के लिए आगे पैर बढ़ाओ। यह मत सोचो कि हम ही स्वयं दु:खी हैं तो दूसरों के कष्ट को कैसे मिटाएँ? अन्य को सुख-शांति देने से आपको भी सुख सम्प्राप्त होगा। यदि हम कष्ट को सहर्ष स्वीकार करें तो क्या कष्ट कभी भी क्लेश बनकर हमारे जीवन की प्रगति के ज्वार को रोक सकता है? कष्ट हमें न तो कोई नुकसान पहुँचा सकता है और न तो हम उससे अन्धे बन सकते हैं। वह तो हमारा नयन-अंजन है।

जीवन की शोभा और आनन्द कष्ट से ही है। सुख और आनन्द का मूल्य कौन करता यदि दु:ख और कष्ट का अस्तित्व नहीं होता? धैर्य, साहस और सहनशक्ति जैसे गुणों का क्या कष्ट के बिना आविर्भाव हो सकता है? कष्ट का अहर्निश चिन्तन करने वालों के लिए जीवन अभिशाप है; कष्ट को विवशता से सहन करने वालों के लिए वह बोझ है; वीरता से सामना करने वालों के लिए वह युद्धभूमि है; और कष्ट तथा आनन्द को समान रूप से समझने वालों के लिए वह वरदान है।

पाटन, गुजरात, जनवरी 1956

श्री स्वामीजी का क्रान्ति-दर्शन

स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती

भारत प्राचीन काल से ही महान् सिद्ध-संन्यासियों, सन्त-महात्माओं एवं योगी-तपस्वियों की भूमि रहा है। कभी वसिष्ठ-विश्वामित्र थे तो कभी व्यास, द्रोण, कृप और संदीपनी; कभी गौड़-गोविन्द-शंकर थे तो कभी कबीर, सूर, तुलसी, रहीम, रैदास, मीरा और सहजो। कभी चैतन्य महाप्रभु और तुकाराम थे तो कभी साईं बाबा, रमण महर्षि तथा अरविन्द। कभी रामकृष्ण-विवेकानन्द, युक्तेश्वर-योगानन्द थे तो कभी विश्वानन्द और शिवानन्द। ये सब-के-सब महान् वेदान्ती थे, अत: विशुद्ध आत्मभाव से प्रेरित एवं *'लोका: समस्ता: सुखिनो भवन्तु'* के दिव्य भाव से संचालित थे। आर्यावर्त्त के महान् वेदान्ती मनीषियों की इस महिमामयी शृंखला की एक सशक्त, दिव्य कड़ी थे श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।

श्री स्वामीजी का वेदान्त शास्त्रीय अथवा किताबी नहीं, बिल्कुल व्यावहारिक, प्रयोगात्मक, उपयोगी एवं मानवतावादी है। कल्पनावादी अथवा अनुमानपरक चिन्तन से उनका कभी कोई सरोकार नहीं रहा। उनका मानवतावाद आत्मभाव पर आधारित है, जिसमें सदैव एकत्व एवं समत्व को महत्त्व दिया गया, तथा उन्होंने इसे अपने विमल विचार, विशुद्ध वाणी और दिव्य कर्मों द्वारा सदा अभिव्यक्ति प्रदान की। इसे उन्होंने सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की एक सशक्त विचारधारा, उत्तम साधन एवं सर्वोपयोगी उपकरण के रूप में भी प्रयुक्त किया। उनके विचारों एवं कार्यों के इसी पहलू को यहाँ उनके क्रान्ति-दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

सर्वप्रथम हमें क्रान्ति-दर्शन का अर्थ समझना चाहिये। क्रान्ति-दर्शन का तात्पर्य होता है एक वैकल्पिक सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक व्यवस्था का दर्शन। इनमें से किसी एक दिशा में परिवर्तन के दर्शन को भी क्रान्ति-दर्शन कहा जाता है। किन्तु हम प्रत्येक प्रकार के ऐसे विकल्प को क्रान्ति-दर्शन नहीं कह सकते। हर प्रकार से एक बेहतर वैकल्पिक व्यवस्था हेतु प्रतिपादित दर्शन को ही हम क्रान्ति-दर्शन कह सकते हैं। धीमा किन्तु व्यवस्थित परिवर्तन किसी भी द्रुत एवं आकस्मिक परिवर्तन से बेहतर होता है। द्रुत एवं उग्र परिवर्तन से अराजक स्थिति उत्पन्न होती है, जो किसी के लिये भी लाभदायक नहीं होती। निरन्तर, व्यवस्थित परिवर्तन में स्थायित्व होता है, तथा इसके फलदायी परिणाम भी मिलते हैं जबकि आकस्मिक, द्रुत एवं अनिश्चित परिवर्तन से अराजक एवं अनिश्चित स्थिति उत्पन्न होती है तथा स्थिति के व्यवस्थित होने तक समाज का बहुत नुकसान हो चुका होता है।

श्री स्वामीजी का योग जहाँ व्यक्तित्व के शोधन-शुद्धिकरण-परिष्कार, उन्नयन-उत्थान-विकास तथा ईश्वरीकरण की दिशा निश्चित करता है, उनका क्रान्ति-दर्शन सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के सिद्धान्त का प्रतिपादन एवं उसके क्रियान्वयन का मार्ग प्रशस्त करता है।

ऐतिहासिक क्रान्तियाँ

क्रान्ति का नाम सुनते ही अनेक लोग चौकन्ने या भयभीत हो जाते हैं, क्योंकि वे कहीं-न-कहीं असुरक्षा और अपराध-भाव से ग्रस्त होते हैं। ऐसा विशेषकर सुविधाभोगी एवं निहित स्वार्थ वाले समूह के लोगों के साथ होता है। इस बात को श्री स्वामीजी बहुत अच्छी तरह समझते थे, क्योंकि समाज की बदलती हुई दिशा और दशा पर उनकी दृष्टि अति स्पष्ट और पैनी थी। इतिहास का उनका ज्ञान केवल किताबी नहीं था। मानव मन की अति गहराई में उतरकर उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं, दुर्घटनाओं, बदलावों एवं क्रान्तियों के प्रभावों को समझने और विश्लेषण करने का प्रयास किया। उन्होंने गहराई से अनुभव किया कि वही क्रान्ति सकारात्मक, स्थायी, फलदायी एवं लोकहितकारी परिणाम पैदा कर सकती है, जो ठोस परिवर्तन ला सके एवं समाज को विखण्डन, बिखराव, अराजकता तथा संघर्षजनित अनावश्यक उत्पीड़न से बचा सके।

क्रान्तियाँ तो होती रही है। फ्रांस की क्रान्ति अभी भी हमारी स्मृति में है। प्रथम विश्वयुद्ध के गर्भ से सोवियत रूस निकला और द्वितीय विश्वयुद्ध के गर्भ से लाल चीन। इन दोनों का आधार मार्क्सवादी दर्शन था, जिसका प्रयोग लेनिन और माओ-त्से-तुंग ने किया। अन्ततः परिणाम क्या हुआ? स्वतन्त्रता एवं समता के नाम पर पुनः दलगत एवं वर्गगत एकाधिकारवाद एवं मानवीय अभिप्रेरणा और मूल्यों का हनन। एक तरफ एक प्रकार के सुविधावादी वर्गों का सफाया हुआ तो दूसरी

तरफ नये सुविधावादी वर्गों का उदय। आम आदमी जहाँ-का-तहाँ रहा; बलिदान का लाभ उन तक पहुँचने से रहा। और अन्ततः उपभोक्ता संस्कृति और बाजारवाद का पुनरागमन हुआ।

श्री स्वामीजी ने कार्ल मार्क्स की तरह विभाजक अवधारणाओं का प्रयोग नहीं किया। मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की बात की जो वस्तुतः सतत् संघर्ष की अनन्त प्रक्रिया है। कितना अच्छा होता यदि मार्क्स भी क्राइस्ट की तरह भारत के किसी आश्रम में गुरु के सान्निध्य में रहकर वेदान्त दर्शन का अध्ययन किये होते। मार्क्स ने मानव व्यक्तित्व एवं मानव समाज के केवल बाह्य पहलुओं पर सोचा, किन्तु श्री स्वामीजी के क्रान्ति-दर्शन का आधार बाह्य और अन्तर का ऐसा अनूठा-अनुपम संयोग एवं समन्वय है जो न केवल सम्पूर्ण व्यक्तित्व का ख्याल रखता है, बल्कि सामाजिक समरसता और सामंजस्य की भी गारण्टी देता है।

क्रान्ति – वेदान्त के परिप्रेक्ष्य में

श्री स्वामीजी ने शोषण, उत्पीड़न या वंचन जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया, क्योंकि प्रथमतः ये शब्द भावात्मक हैं और अच्छी तरह परिभाषित भी नहीं हैं। द्वितीय, ये वेदान्त की भावना के विपरीत द्वैतभाव के जनक हैं। एक तरफ शोषक, उत्पीड़क और वंचक के भाव जगते हैं तो दूसरी तरफ शोषित, उत्पीड़ित और वंचित की अवधारणा सामने आती है। इसके परिणामस्वरूप वर्ग-विभेद, सामाजिक विखण्डन, द्वेष-द्वन्द्व और वर्ग-संघर्ष की स्थिति बनने लगती है। वर्ग-विभेद, वर्ग-संघर्ष, सामाजिक विभाजन एवं पारस्परिक घृणा पर आधारित क्रान्ति अवश्यमेव घृणा और प्रतिक्रान्ति को ही जन्म देगी। ऐसी क्रान्ति के उपरान्त विजयी वर्ग स्वयं में निहित स्वार्थ एवं सुविधापरक मनोवृत्ति से ग्रस्त हो जाता है और उनके विरोध में कल के उनके साथी ही उठ खड़े होते हैं। हिंसा और घृणा के बीज से हिंसा और घृणा की फसल ही पैदा होगी। और इस प्रकार क्रान्ति-प्रतिक्रान्ति की इस प्रक्रिया में आम आदमी पिसता ही रहेगा। यह तो पूर्णतः गैर-वेदान्तिक स्थिति है न!

श्री स्वामीजी का वेदान्ती हृदय क्रान्ति तो चाहता था किन्तु उसके दुष्परिणामों से बचाते हुए वे समाज को एक उपमार्ग (बाईपास) से निकालना चाहते थे। इसीलिये श्री स्वामीजी ने वर्ग-विभेद, विभाजन और संघर्ष की बात कभी नहीं की। उन्होंने अपने क्रान्ति-दर्शन के सन्दर्भ समूह को, जो समाज का सबसे विशाल वर्ग है तथा उत्पादन एवं सेवा के अति भारी बोझ का वहन करता है, भारवाहक कहा। श्री स्वामीजी ने भारवाहकों की दशा पर अत्यधिक ध्यान दिया। यह अपने-आप में एक महत्त्वपूर्ण बात है। वे एक सन्त, क्रान्तिकारी दार्शनिक थे, अतः उन्होंने अपने संदर्भ-समूह को निर्दिष्ट करने के लिये एक कोमल किन्तु अत्यधिक शक्तिशाली एवं अर्थपूर्ण शब्द का उपयोग किया – भारवाहक।

भारवाहकों का उत्थान

मानव इतिहास में पहली बार किसी सन्त-संन्यासी ने एक अति सार्थक सामाजिक-आर्थिक पहलू को इतने सशक्त ढंग से अभिव्यक्ति दी तथा समस्या का निदान भी स्पष्टत: निर्दिष्ट किया। वस्तुत: भारवाहक समूह भारतीय समाज का एक विशाल, अभिन्न एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। इस समूह के महत्त्व को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा कि ये भारतीय आर्थिक व्यवस्था की नींव की ईंटें हैं। हमारा जीवन, हमारी सुख-सुविधाएँ, विकास, परम्परा और संस्कृति की रक्षा तथा संवर्द्धन पूरी तरह इन भारवाहकों पर ही आधारित है, किन्तु हमारा समाज इनकी सामान्य सुख-सुविधाओं का भी ख्याल नहीं करता। इसे उन्होंने एक भारी सामाजिक त्रासदी कहा तथा समाज के सुविधा-सम्पन्न लोगों से इस समूह के कल्याणार्थ आगे आने और यथासम्भव उनकी सहायता करने का आवाहन एवं तदर्थ आवश्यक प्रेरणा प्रदान की। उनका कहना था कि इस समूह को हर प्रकार से सक्षम बनाना हमारा दायित्व है।

समाज की अदालत में इस समूह की वकालत करते हुए उन्होंने कहा– 'दो... दो...दो, उनके लिये, जो तुम्हारे आर्थिक-सामाजिक जीवन, राष्ट्रीय स्वाभिमान तथा सभ्यता और संस्कृति के संरक्षक हैं, आधार हैं। आगे आकर उन्हें सहारा दो, विशेषकर उनमें से ऐसे लोगों को जो बहुत पीछे छूट गये या छूटते जा रहे हैं; जो दीन, हीन, गृहविहीन, साधनहीन, दु:खी, बीमार और अपंग हैं; उनके लिये दो। इसमें तुम्हारी ही सुरक्षा है।' श्री स्वामीजी का वेदान्त पूर्णत: प्रयोगात्मक एवं उपयोगितावादी है। उन्होंने कहा, 'यदि एक इन्सान भूखा है तो समझो भगवान भूखा है। यदि एक इन्सान बीमार है तो समझो भगवान बीमार है।' वस्तुत: वेदान्त दर्शन की पराकाष्ठा है उनका क्रान्ति-दर्शन।

देने की इस अवधारणा की समाजशास्त्रीय व्याख्या करते हुए श्री स्वामीजी ने कहा कि इसका तात्पर्य दान, दया, उपकार से नहीं, बल्कि आपके सामाजिक उत्तरदायित्व से है। उन्होंने इस तथ्य को स्पष्टत: उजागर किया कि किसी भी व्यक्ति के जीवन के निर्माण का आधार समाज और सामाजिक संस्थाएँ होती हैं, अत: समाज के प्रति अनिवार्यत: उसके कुछ कर्त्तव्य बनते हैं। योग्यता-क्षमता, सत्ता-सम्पत्ति, मान-सम्मान, जो भी आपके पास है, केवल आपके अपने एवं अपनों के प्रयासों के परिणाम नहीं हैं। किसी बच्चे को बचपन में ही समाज से अलग कर दीजिये, देखिये कि वह क्या बनता है। या तो वह पागल हो जायेगा अथवा आवारा बन जायेगा। तो समाज का बहुत बड़ा उपकार है आप पर। अत: आपके जीवन पर, आपके सब-कुछ पर उसका अधिकार है। यदि आप किसी के लिये कुछ करते हैं तो उसपर उपकार नहीं करते बल्कि अपने ऊपर चढ़े हुए सामाजिक ऋण का एक छोटा-सा अंश अदा करते हैं। प्रत्येक ईमानदार आदमी श्री स्वामीजी के इस सारगर्भित कथन को अवश्य ही तहे दिल से स्वीकार करेगा।

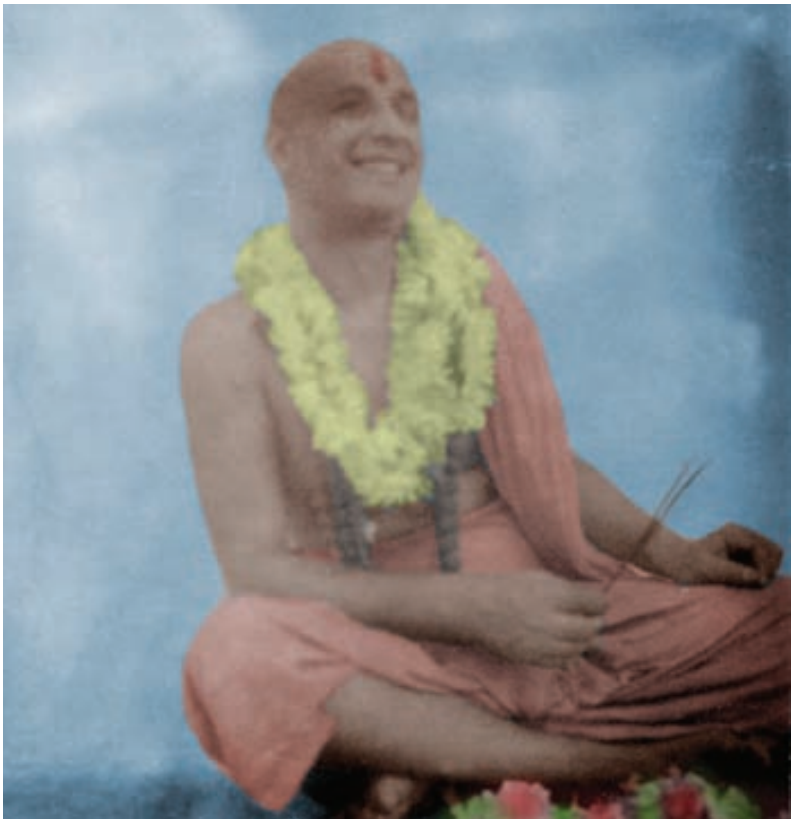

हृदय का विकास

प्रत्येक क्रान्ति के केवल लक्ष्य, भाषा-परिभाषा एवं मुहावरे ही नहीं होते बल्कि क्रियान्वयन की पद्धति और प्रक्रिया भी होती है। अपने क्रान्ति-दर्शन को मूर्तरूप देने हेतु श्री स्वामीजी ने मुख्यत: मानव हृदय को आधार बनाया। हृदय हमारे भौतिक और आध्यात्मिक जीवन, दोनों का मध्यस्थल है। यदि भौतिक जीवन पर दृष्टिपात करें तो हम पायेंगे कि उसमें एक ओर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, राग, द्वेष, घृणा एवं स्वार्थ का निवास है तो दूसरी ओर श्रद्धा, विश्वास, आस्था, निष्ठा, प्रेम, दया, करुणा, सहानुभूति, सहयोग, समन्वय, सामंजस्य एवं परमार्थ का भी स्थान है। जीवन की इन समस्त नकारात्मक एवं सकारात्मक भावनाओं का क्षेत्र तो हमारा हृदय ही है। इतना ही नहीं, परंब्रह्म परमेश्वर भी तो हमारे हृदय में ही विराजमान हैं। श्रीकृष्ण ने गीता में अनेकों बार स्पष्टत: यह बात कही – *'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो', 'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित:', 'ईश्वर: सर्वभूतानां*

हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति', अर्थात्, हे अर्जुन! आत्मा, परमात्मा या ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं। वस्तुत: वेदान्त दर्शन के एकत्व तथा आत्मभाव का मूल आधार तो यह तथ्य ही है।

श्री स्वामीजी ने इस मौलिक वेदान्तिक अवधारणा को अपने क्रान्ति-दर्शन के क्रियान्वयन का आधार बनाया। उन्होंने अपनी परम शुद्ध, ओजस्वी वाणी द्वारा सब लोगों से अपील की कि समाज के भारवाहकों की सहायता और उत्थान करने के लिये आगे आओ। सुविधासम्पन्न लोगों से उन्होंने बार-बार कहा कि अपने समस्त साधनों का यथासंभव हिस्सा बटाओ। तुम्हारे पास जो कुछ है उसका एक अंश उन्हें दो जिनके पास उसका अभाव है। अपने परिवार के सदस्यों के लिये जो कुछ खरीदते या उपलब्ध कराते हो वह पड़ोस के कम-से-कम एक अभावग्रस्त परिवार के लिये उपलब्ध कराओ। यहाँ दान की नहीं बल्कि हिस्सा बटाने की बात हो रही है। हिस्सा बटाने की इस अवधारणा को उन्होंने सामाजिक उत्तरदायित्व एवं व्यक्तिगत शुद्धिकरण की दृष्टि से प्रतिपादित किया। वे बार-बार कहा करते थे कि हिस्सा बटाने से तुम थोड़े उदार, परमार्थी और शुद्ध होते हो और इसी अनुपात में अपने जीवन में सुख-शान्ति-सन्तोष का भी अनुभव करते हो। श्री स्वामीजी के ये विचार और वचन केवल कहने-सुनने के लिये नहीं बल्कि अनुसरण एवं अनुभव करने के लिये हैं। जिन लोगों ने भी, आंशिक रूप से ही सही, इन शुभ वचनों का अनुसरण किया, उन्हें अपने तथा अपनों के सन्दर्भ में सकारात्मक रूपान्तरण के अनुभव हुए, उनका जीवन अधिक सरल, सहज, सुखी और शान्त हुआ।

इसी सन्दर्भ में उन्होंने 'ओपन हार्ट सर्जरी' की बात की तथा स्वयं को 'ओपन हार्ट सर्जन' घोषित किया। हृदय अनाहत चक्र के क्षेत्र में है। अनाहत चक्र हमारे व्यक्तित्व का केन्द्र है। यह मूलाधार और सहस्रार के ठीक बीच की, भोग और योग के सन्तुलन एवं समन्वय की अवस्था है। श्री स्वामीजी यह बात अच्छी तरह जानते थे कि वे सबको तो योगी नहीं बना सकते, किन्तु वे सबको सब दिन के लिये गर्दिश में भी नहीं छोड़ना चाहते थे। अत: उन्होंने कहा कि मैं ओपन हार्ट सर्जन हूँ। आओ, आओ मेरे पास, अपने हृदय की सर्जरी करवाओ। मैं इसे खोलूँगा, 'मुक्त' करूँगा। इसकी खिड़कियों-दरवाजों से होकर शुभ विचारों, पवित्र भावनाओं तथा दिव्य प्रेम की हवा का संचार होगा, तुम अधिकाधिक शुद्ध बनोगे और इसके परिणामस्वरूप तुम्हारे रोग, शोक, भय और अशान्ति में कमी आएगी तथा तुम अधिकाधिक उदार और परमार्थी बनोगे, अपने जीवन में सुख-समृद्धि-शान्ति का अनुभव करोगे।

इस विषय पर एक दूसरी दृष्टि से भी विचार कर सकते हैं। श्री स्वामीजी तो महान् सिद्ध, संन्यासी, सन्त, द्रष्टा और गुरु थे। अत: यहाँ हृदय खोलने का तात्पर्य आत्मजागृति से भी लिया जा सकता है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है, ईश्वर तो हृदय में विराजमान हैं। गुरु की दृष्टि, स्पर्श या कृपा से जब वह सुषुप्त साईं जागता है तो

आदमी एकत्व, समत्व, समभाव और आत्मभाव का अनुभव करने लगता है। इस प्रकार का आंशिक अनुभव भी व्यक्ति को परमार्थी बना देता है और वह तन-मन-धन न्यौछावर करने हेतु प्रस्तुत हो जाता है। यह आंशिक ईश्वरीकरण श्री स्वामीजी के क्रान्ति-दर्शन का एक अभिन्न और अमूल्य विध्यात्मक पहलू है।

प्रेरणास्पद जीवन

अन्त में, श्री स्वामीजी के क्रान्ति दर्शन के पूर्ववृत्त पर दृष्टिपात किये बिना यह सम्पूर्ण वैचारिक वर्णन-विश्लेषण अधूरा ही रहेगा। श्री स्वामीजी का जन्म सन् 1923 की मार्गशीर्ष पूर्णिमा की मध्यरात्रि में अल्मोड़ा के निकट हिमालय की तराई में अवस्थित एक गाँव के समृद्ध परिवार में हुआ था। किन्तु आजन्म जाग्रत एवं देदीप्यमान् आत्मा से युक्त होने के कारण वे भौतिक सम्पदा के स्पर्श से पूर्णत: अछूते रहे। साथ ही, उनके शुद्ध, सदय हृदय ने अपने तथा अपने आस-पास के गाँवों के तत्कालीन भारवाहकों की परिस्थिति, पीड़ा एवं लाचारी का गहराई से अनुभव किया।

किन्तु भाग्य की दिशा तो कुछ और ही थी। उन्नीस वर्ष की अवस्था में गाँव-घर छोड़े। ऋषिकेश में गुरु-सेवा, तदुपरान्त परिव्राजक जीवन, और अन्तत: योग के माध्यम से विश्व-विजय प्राप्त करने के बाद सन् 1989 में जब वे रिखियावाले बाबा बने तो अपने आस-पास के ग्रामीणों की दयनीय दशा ने सहज ही उनका ध्यान आकृष्ट किया। अपनी युवावस्था के परिवेश के गहरे प्रभाव ताजा हो गये। उनके अन्दर के पूर्णत: जाग्रत ईश्वर ने भी उनसे कहा, 'सत्यानन्द, जो सुविधाएँ मैंने तुम्हें प्रदान की हैं, वे अपने पड़ोसियों को भी उपलब्ध कराओ।' अतीत की गहरी स्मृति, वर्तमान के परिदृश्य तथा ईश्वरादेश के आलोक में श्री स्वामीजी ने पूर्ण गंभीरता एवं उत्साह से अपने पड़ोस के भारवाहकों के उद्धार का कार्य अविलम्ब प्रारम्भ किया। उनका सम्पूर्ण मिशन इस कार्य में जुट गया तथा सारे क्रिया-कलाप युद्ध-स्तर पर संचालित होने लगे।

श्री स्वामीजी के अनुग्रह, आशीर्वाद तथा स्वामी निरंजनानन्द जी एवं स्वामी सत्यसंगानन्द जी के मार्गदर्शन में लगभग दो दशक के अन्दर रिखिया एवं रिखिया के आस-पास के ग्रामीणों के जीवन में जो आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन आया है वह आधुनिक इतिहास की एक अद्‌भुत, अभूतपूर्व घटना है, मिसाल है। एक सन्त के क्रान्तिकारी दर्शन, सत्संकल्प तथा उनके मिशन के सद्‌प्रयासों से लगभग 50 हजार ग्रामीण परिवारों को इस प्रकार के सामर्थ्य तथा सुख-शान्ति की प्राप्ति हुई है, जिसकी वे स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकते थे। लोगों को बहुआयामी सुविधाएँ तथा सर्वांगीण विकास के अवसर उपलब्ध कराये गये हैं। दो दशक की अल्पावधि में जो कुछ हुआ वह कहने-सुनने की नहीं, प्रत्यक्षत: देखने और अनुभव करने की चीज है। वस्तुत: रिखिया श्री स्वामीजी के क्रान्ति-दर्शन की प्रयोगशाला है, जहाँ हमें उनके महान् प्रयोग के सद्‌परिणामों के साक्षात् दर्शन होते हैं।

सत्यम् का पत्रादेश

24.11.1959, बम्बई

धर्मशक्ति,

शरीरों के निकट रहने पर भी आत्मा का योग नहीं होता है। हम जिसका चिन्तन करते हैं, उसी का संग भी करते हैं। साधक अपने गुरु के साथ भूलोक के ऊपर गगन-मण्डल में संग करते हैं। ऐसी संगत के लिये मन को अन्तर्मुख करना पड़ता है, उसे उठाना पड़ता है। ज्यों-ज्यों मन अपने गुरु में मिलता जाता है, त्यों-त्यों वह भू-लोक के तल से ऊपर उठकर गगन में पहुँचता है। वहाँ लाखों योजन का शून्य है, जहाँ सारे संसार के मानसों का सेंट्रल टेलिएक्सचेंज है। मैं सब में हूँ, पर न जाने क्यों तुम मुझे नहीं देखते।

वे भाग्यशाली हैं जिनका हृदय गुरु के प्रति भाव से भरा है, क्योंकि मनोयोग में भाव ही विद्युत-शक्ति है। भाव नहीं तो आन्तरिक सम्पर्क मुश्किल है। और यदि भाव वाले साधक अपनी आतुरता का उपयोग नहीं करते तो वे मौका चूकते हैं। इस संसार में पहले तो प्रेम मिलता ही नहीं, और यदि है तो उसमें कामादि की प्रधानता है। ऐसे प्रेम का अन्त मोह या वैर में होता है। अत: गुरु के प्रति प्रेम होता ही नहीं, होता भी है तो साधारण आदर के रूप में, अनुराग के रूप में नहीं, और यदि अनुराग भी हुआ तो वह धीरे-धीरे विकृत होता जाता है। पर जहाँ गुरु और शिष्य परस्पर अभिन्न, पर विचारों से अलिप्त हैं, वहाँ सारी सिद्धियाँ जागती हैं। गहरा और गजब का प्रेम हो, आदर्श हो, शुद्ध हो। यही बिजली की ताकत है, जो ब्रॉडकास्टर और रिसीवर को चलाती है। यदि तुममें इतना ऊँचा भाव है, यदि इतनी समीपता है, तो ध्यान के माइलस्टोन से आगे बढ़ो। मेरे प्रत्येक सन्देश को सुनो, अन्तर भाषा में मानस-पत्र पर लिखकर शून्य की गति में पत्र भेजो और परखो। समझो और करो। ध्यान स्मृति में डूबते जाओ। सदा-सर्वदा एक ही प्रवाह में बहो। क्या हुआ, क्या हो रहा है, क्या होगा, यह सोचना छोड़ दो, व्यर्थ है। सब उसका दिया है। दाता एक है। किसी को दिया, किसी को नहीं। क्यों दिया, क्यों नहीं दिया, यह दोनों सोचना पागलपन है। जीवन में सदा शान्ति का पाठ सीखना चाहिये। तभी कुछ कर सकोगे।

– *सत्यम्*

कर्म ही जीवन का प्रधान तत्त्व

गीता का मुख्य विषय योग एवं ब्रह्मविद्या है। लेकिन साथ ही यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि इस विद्या का उपदेश भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ही क्यों दिया और वह भी कुरुक्षेत्र के समरस्थल में। इसका उपदेश तो किसी त्यागी या वृद्ध व्यक्ति को देना चाहिए था जो संसार को त्याग चुका होता या उसके बंधनों से मुक्त होना चाहता था। ठीक इसके विपरीत अर्जुन एक सांसारिक व्यक्ति है, कुरुक्षेत्र के मैदान में सेनापति के रूप में मुकुट धारण किये उपस्थित है। अर्जुन ने अब तक लड़ाई जीती नहीं, उसे तो लड़ाई लड़नी है।

योग का सम्बन्ध त्याग या कर्म-पराङ्मुखता से नहीं, बल्कि कर्मठता एवं कर्त्तव्य-परायणता से है। यह मन को शक्तिशाली बनाकर मानव-जीवन को उपयोगी एवं कर्मनिष्ठ बनाता है। प्रत्येक कर्म करने वाले व्यक्ति को कर्म बाँधता ही है। कर्म करते-करते कर्म का आघात लगता ही है। आघात कई प्रकार के होते हैं। उदाहरण के लिए श्रम के आघात को ही लें। इससे शरीर थक जाता है। फिर रोग का आघात लगता है। वैसे ही जीवन की असफलताओं का भी आघात लगता है। इन आघातों के कारण मनुष्य को जीवन का सही आनन्द नहीं मिल पाता। सुख एवं आनन्द समझ में ही नहीं आता। यदि मानव-जीवन से आघातों को निकाल दिया जाए, उसके प्रभाव को समाप्त कर दिया जाए तो जीवन आनन्दमय हो जाएगा।

यहाँ आघात से केवल दु:ख का ही आघात नहीं समझना चाहिए, सुख का भी आघात होता है। जो कर्म करेगा उसे आघात लगेगा ही और मनुष्य कर्म किये बिना रह भी नहीं सकता। यह मन की प्रवृत्ति है। उसकी प्रकृति उसे कर्म करने को विवश कर देती है। मन कभी बैठ नहीं सकता। जो साधु एकान्त में बैठकर आध्यात्मिक साधना करता है, वह भी कर्म करता है। साधना भी कर्म है। यदि कोई मिथ्याचारी प्रत्यक्ष रूप से कर्म नहीं करता तो इससे क्या! उसका मन तो अप्रत्यक्ष रूप से लगातार कर्म करता रहता है। लेकिन कर्म करना कोई पाप नहीं है। कर्म पर लोगों ने नाहक पाप थोप दिया है। कर्म तो करना ही चाहिये, केवल उसके आघात से बचना चाहिए, उसे दूर करना चाहिए।

गीता योगशास्त्र का विषय है – सिद्धि, मोक्ष या समाधि का नहीं। यह उपदेश देती है आघात-रहित जीवन का। यदि मनुष्य आसक्तियों को छोड़कर कर्म करे और सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय में अपने मनोभावों को संतुलित रखे, तो वह दु:खी नहीं हो सकता। योग की इसी स्थिति को प्राप्त करने के लिए प्रत्येक साधक को कर्त्तव्य-कर्म करना चाहिए। भक्ति-मार्ग या ज्ञान-मार्ग के पथिक को यदि यह स्थिति प्राप्त नहीं होती तो वह कोल्हू के बैल की तरह सम्पूर्ण जीवन बिताने के बाद

भी जब रुककर आँखें खोलता है तो अपने को वहीं पाता है, जहाँ से उसने अपनी साधना प्रारम्भ की थी। वह चाहे जब तक साधना करे, जीवन का बंधन नहीं खुलता, योग की अवस्था प्राप्त नहीं होती।

लेकिन प्रत्येक योगाभ्यासी को साधना प्रारम्भ करने के पूर्व सोचना चाहिए कि योग की उसे क्यों आवश्यकता पड़ी। अपने गंतव्य स्थान की कल्पना किये बिना साधना के पथ का पथिक आध्यात्मिक दिग्भ्रान्त बनकर रह जाता है। योग सिद्धि, मोक्ष या निर्वाण के लिए नहीं, बल्कि यह मानसिक व्यायाम है। मन जब मजबूत होता है तो उस पर कर्म का आघात नहीं पड़ता। आघातों से बचने के लिये मनुष्य को अपने जीवन को हर परिस्थिति के अनुकूल बनाना चाहिए। जीवन सादा एवं गरीब की तरह बिताना चाहिए। परिस्थितियों के अनुकूल जीवन को ढालने के लिये तैयार रहना चाहिए। इसी सिलसिले में हठयोग, राजयोग या ज्ञानयोग की बात आती है।

भक्तियोग भगवान में आस्था उत्पन्न कर मनुष्य में निश्चिन्तता, निर्भीकता उत्पन्न करता है; राजयोग त्याग एवं एकाग्रता उत्पन्न करता है एवं ज्ञानयोग बुद्धि प्रदान करता है। कर्म-कुशलता कर्म-योगी व्यक्ति को आघातों से बचाने की क्षमता प्राप्त करने में मदद करती है।

मनुष्य की निष्ठा दो प्रकार की होती है। एक तो प्रवृत्ति मार्ग की, जो अधिकतर संसारी गृहस्थों में पायी जाती है और दूसरी निवृत्ति मार्ग की, जो संन्यासियों में देखने में आती है। ये दोनों मार्ग भिन्न-भिन्न आश्रमों का प्रतिनिधित्व नहीं करते, बल्कि जीवन की दो व्यावहारिक दृष्टि-भंगिमाएँ मात्र हैं।

ज्ञान-योगियों को जो ज्ञान के द्वारा प्राप्त होता है, वही कर्म-योगियों को कर्म के द्वारा मिलता है। प्रवृत्ति मार्ग कर्म का मार्ग है और निवृत्ति मार्ग कर्म की आसक्ति के त्याग का। एक पिपीलिका मार्ग है, दूसरा विहंगम। जिस लक्ष्य को कर्म-योगी चींटी

की तरह धीरे-धीरे प्राप्त करता है, उसी लक्ष्य को त्यागी निवृत्ति मार्ग द्वारा पक्षी की तरह उड़कर प्राप्त करता है।

कर्म करते-करते मनुष्य के जीवन में सद्‌गुणों का संचय होता है तथा दु:ख के आघातों को सहन करने की क्षमता आती है। अत: कर्ममार्ग ही श्रेष्ठ एवं निरापद है। यह सब को प्राप्त भी है। कर्म का त्याग कठिन है और यदि कोई करे भी तो उसे उसका अभिमान नहीं करना चाहिए। भाव ग्रंथियों के प्रत्येक आयाम का परित्याग ही सच्चा त्याग है।

शरीर और प्राण से मोह न हो और त्याग का अभिमान भी न हो। त्याग महान् है, लेकिन सब को प्राप्त नहीं है। कर्म सर्वसुलभ है। कर्म करते-करते शान्ति प्राप्त होती है। आघातों से बचने की क्षमता भी उत्पन्न होती है और आनन्द भी मिलता है। लेकिन इसके लिये साधना करनी पड़ती है। इसके लिये मन को उचित शिक्षा की आवश्यकता है। इसी शिक्षा एवं उपाय का नाम योग है। जो योगी होता है वही आत्मज्ञ होता है। वह निर्भय हो जाता है। भय तो एक मानसिक स्थिति है, ग्रंथि है। योग की यह स्थिति गृहस्थों को भी प्राप्त होती है।

अब प्रश्न उठता है, क्या मनुष्य इच्छारहित बन सकता है? बौद्धों का मत है कि इच्छा से ही दु:ख की उत्पत्ति होती है। लेकिन गीता कहती है कि इच्छा कर सकते हो। जिस प्रकार अनेक नदियाँ समुद्र में आकर गिरती हैं, लेकिन समुद्र अपनी मर्यादा को कभी भंग नहीं करता, उसी प्रकार कामनाएँ उठ सकती हैं, पर उसका असर योगी पर नहीं पड़ता; उसी प्रकार जैसे मजबूत देह वाला मौसम के प्रभाव को आसानी से बर्दाश्त कर लेता है। जो कामनाओं को पी जाता है, वही योगी है। संसार में कर्मयोगी इच्छाओं के बीच आघातरहित बन कर रहता है। योगी कामनाएँ करता है, उसके अनुकूल कर्म भी करता है और कर्मफल को हँसकर भोग भी लेता है। फल का असर उस पर नहीं होता। लेकिन भोगी फल के प्रभाव से प्रभावित होता है। मन के इसी स्वभाव को सुधारने के लिये उचित शिक्षा की आवश्यकता है। यह होता है हठयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग और राजयोग के द्वारा।

शांति और आनन्द की प्राप्ति के लिये मनुष्य कर्म तो करे, परन्तु कर्मफल के आघात से अपने को बचाये। कर्म-मार्ग में रहकर कुशलतापूर्वक कर्म करते हुए कर्मों से उत्पन्न होने वाले आघातों से उसे बचना है। यह हो कैसे, इसके क्या उपाय हैं? इसका उत्तर हमें गीता देती है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को योग में स्थिर रहकर कर्म करने का उपदेश देते हैं। जो योग में स्थिर रहकर कर्म करता है, वह बंधन में नहीं बंधता। वह बंधनमुक्त हो जाता है। ठीक इसके विपरीत भोगी कर्मफल के बंधनों से बंधा रहता है। योगी का मन मजबूत होता है, भोगी का कमजोर। योग से मोक्ष की प्राप्ति होती है और भोग से रोग की।

'गीता तत्त्व दर्शन' से संकलित

स्वास्थ्य का रहस्य

आधुनिक युग में लोग स्वास्थ्य के लिए भोजन, औषधि, व्यायाम आदि के विषय पर बहुत ध्यान देते हैं, किन्तु वे भूलते जा रहे हैं कि शारीरिक स्वास्थ्य ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य नहीं, वह तो आंतरिक व्यक्तित्व है जो सुगठित मानव को निर्मित करता है। आधुनिक सभ्यता के पूर्व लोग माता, छोटी माता, हैजा, पीतज्वर, महामारी आदि अनेक संक्रामक रोगों के शिकार हो जाते थे। हम सदा से इन रोगों व इनके प्रभाव से बचते आ रहे हैं। इतिहास को पलटकर कर देखो तो पाओगे कि ऐसी-ऐसी भयंकर परिस्थितियाँ और ऐसे-ऐसे भयंकर रोग जो नगर-के-नगर उजाड़ कर रख दें, कभी साध्य नहीं हुये थे। इन प्रकोपों से मानवता का उद्धार करने और उसे स्वास्थ्य प्रदान करने के लिये बहुत सोचा गया, अनेकों प्रयोग किये गये। हमें सोचना पड़ा कि क्या ऐसा कोई साधन है जिससे पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सके? गत कुछ वर्षों से हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि इस प्रश्न का उत्तर केवल योग के पास है।

हम अपने शारीरिक स्वास्थ्य को बनाने के लिये नाना उपाय करते रहे हैं। अपनी पोषक तत्त्वों की आवश्यकता पूर्ति के लिये हम विटामिनों और खनिज पदार्थों को जुटाते रहे हैं। अब थोड़ी देर के लिये हम आंतरिक व्यक्तित्व पर सोंचे। आपके मन की क्या अवस्था है? हमने अपने मन की आवश्यकताओं के लिये कुछ नहीं किया, इसीलिये मनुष्य का मन रोगी हो गया है। वह नहीं जानता कि किस प्रकार सोचें या क्यों सोचे। मनुष्य को नहीं मालूम कि क्या सोचना चाहिये, क्या अनुभव करना चाहिये। उसे नहीं मालूम कि अनुभव क्यों करे। वह एक शताब्दी से चलाई जा रही मोटरगाड़ी बन गया है। ऐसी गाड़ी इत्तफाक से ही अपने गन्तव्य तक पहुँच सकती है। उसमें किसी दुर्घटना के शिकार होने की संभावना ही अधिक होती है। इसलिए मन के नियंत्रण की विधि का ज्ञान होना अति आवश्यक है। इसके द्वारा हम मानसिक स्वास्थ्य व गुणों को बढ़ा सकते हैं। यही योग का मुख्य विषय है।

आप प्रतिदिन स्नान क्यों करते हैं, अपने रसोई घर की सफाई क्यों करते हैं? इसलिए कि आप सोचते हैं कि शारीरिक स्वास्थ्य के लिये बाह्य स्वच्छता अति आवश्यक है। उसी प्रकार क्या आपने कभी सोचा कि मन से किसी विशेष विचार को बाहर निकाल फेंकना जरूरी है। आप अपने रसोईघर और अपने शौचालय को दिन में दो बार साफ करते हैं, परन्तु मन का क्या हाल है? जब आपके मन में भय, अधीरता, चिन्ता, दु:ख या निराशा का विचार उठता है तो आप क्या करते हैं? आप उसी के साथ चले जाते हैं। आप उसे मन से निकालने का प्रयत्न भी नहीं करते। इसीलिये आप क्रोध, नैराश्य, उदासीनता, भय और चिड़चिड़ेपन के शिकार हो जाते हैं।

ये विचार आपके मन पर आघात पहुँचा रहे हैं। शरीर में प्रवेश करने वाले रोगाणुओं की तरह ये आपके मन में घर कर गये हैं। मगर ये विचार इन रोगाणुओं से भी अधिक शक्तिशाली और खतरनाक होते हैं। जब रोगाणु शरीर में प्रवेश करते हैं तब विशेष औषधियों के द्वारा उन्हें नष्ट करने का उपाय किया जाता है। किन्तु जब भय या वासना का कोई विचार आपके मन में घर कर जाता है, क्या आप जानते हैं कि उसका प्रभाव मन में कितनी गहराई में जाकर पड़ता है? जब हम स्वास्थ्य की बातें करते हैं तो हमें पहले मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान होना चाहिए क्योंकि यही स्वास्थ्य की कुंजी है।

तीन शक्तियाँ

योग शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य की एक सुव्यवस्थित प्रणाली है। योग दर्शन के अनुसार मानव तीन आधारभूत तत्त्वों – जीवनी-शक्ति या प्राण, मानसिक-शक्ति या चित्त और आध्यात्मिक-शक्ति या आत्मा का सम्मिश्रण है।

प्राण ब्रह्माण्डीय जीवनी-शक्ति है और यह शरीर इसकी एक निश्चित मात्रा से परिपूर्ण है। हमारा जीवन प्राणों का चमत्कारिक स्वरूप है। प्राणों के कारण ही हमारा जीवन क्रियाशील और विकसित हो रहा है। यह प्राणशक्ति श्वास द्वारा ग्रहण की जा रही वायु मात्र नहीं, यह हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व में व्याप्त है। हम इसी के साथ पैदा हुये हैं। भ्रूण चार माह तक माता के प्राणों पर आधारित होता है। पाँचवें माह से वह प्राणों की स्वतंत्र इकाई बन जाता है। जीवन प्राणों का प्रकाशन है। जब शरीर में उचित मात्रा में प्राणों का संचार हो रहा हो तो आप ऊर्जा और उत्साह का अनुभव करते हैं और आपकी इन्द्रिय संवेदनायें तीक्ष्ण होती हैं, किन्तु जब प्राण संचरण का परिमाण कम होता है तब आप थकान और अशक्तता का अनुभव करते हैं।

प्राणों के अलावा शरीर में एक और शक्ति है जिसे मन या चेतना कहते हैं। इस शक्ति के द्वारा आप सोचते-विचारते, याद करते और उचित-अनुचित का ज्ञान रखते हैं। हमारे अन्दर अनन्त मानसिक गुण और प्रतिभायें विद्यमान हैं, जो इसी मानसिक शक्ति का प्रकाशन है।

हमारे शरीर में मनस् शक्ति और प्राणशक्ति दो प्रमुख प्रवाहों के रूप में प्रकाशित होती हैं। इन प्रवाहिनियों को इड़ा नाड़ी और पिंगला नाड़ी कहते हैं। जैसे बिजली के बल्ब में दो प्रवाह होते हैं, जिन्हें पाजिटिव और नेगेटिव या गर्म और ठंडा तार कहते हैं, वैसे ही शरीर के प्रत्येक अंग में इन दो नाड़ियों का प्रवाह है। मनुष्य शरीर को प्राण और मनस् शक्तियाँ ही चलाती हैं।

जब प्राणशक्ति और मनस् शक्ति का संयोजन होता है तो वे ऊर्जा में परिणत हो जाती हैं। यदि दोनों में अलगाव हो तो क्या होगा? आप यदि बिजली की लाइन से एक तार निकाल दें तो बत्ती नहीं जलेगी। ठीक यही स्थिति शरीर के अंगों की भी है। यदि एक शक्ति प्रवाहित हो और दूसरी न हो रही हो तो अंग अकर्मण्य हो जाते हैं। इसीलिये योग के अनुसार सिर से पैरों तक इन दोनों प्रवाहों में संतुलन होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि इन दोनों में असंतुलन है तो रोग होगा।

प्राणशक्ति और चित्तशक्ति, दोनों ही शारीरिक शक्तियाँ हैं। तीसरी शक्ति है आध्यात्मिक आत्मशक्ति। यह अत्यंत सूक्ष्म, भावातीत एवं निराकार शक्ति है। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक, तीनों ही शक्तियों का निर्माता है मूलाधार चक्र। मगर आध्यात्मिक शक्ति का जेनरेटर बड़ा शक्तिशाली होता है और यह शक्ति इड़ा या पिंगला द्वारा प्रवाहित नहीं हो सकती। इसके लिये एक अन्य नाड़ी की आवश्यकता पड़ती है जिसे सुषुम्ना कहते हैं। यह नाड़ी शक्ति को मूलाधार से सहस्रार तक ले जाती है। यह सम्पूर्ण मस्तिष्क को प्रकाशित करती है।

आप शायद जानते होंगे कि मानव मस्तिष्क का केवल एक भाग कार्य कर रहा है, अन्य नौ भाग बंद है। इन नौ भागों में अनन्त ज्ञान, अनुभवों और शक्तियों का भण्डार है। हम इसका उपयोग नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि वहाँ चेतन शक्ति नहीं है। कुंडलिनी शक्ति के जागरण से जब सुषुम्ना उस शक्ति को सहस्रार तक लाती है तो यह अप्रकाशित ज्ञान-भंडार मुखरित हो उठता है। तब ये आपको केवल मानसिक स्वास्थ्य ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक पूंजी भी दे देता है। जब योगाभ्यासी कुंडलिनी जागरण द्वारा शक्ति को सहस्रार में पहुँचाने में समर्थ होता है तो वह शरीर, मन और आत्मा का स्वामी बन जाता है।

स्वास्थ्य का रहस्य है – प्राण, मनस् और आत्म-शक्तियों का उचित एवं संतुलित वितरण। योग शास्त्र में हठयोग के अभ्यास द्वारा शरीर-शुद्धि, प्राणायाम के द्वारा नाड़ी-शुद्धि और ध्यान द्वारा आध्यात्मिक शक्ति का विकास कर मन, प्राण, और आत्मशक्तियों को संतुलित किया जा सकता है। इसीलिये हठयोग, राजयोग,

क्रियायोग आदि जैसे योग के विभिन्न अंग और अभ्यास न केवल शारीरिक बल्कि मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिये भी अत्यंत शक्तिशाली उपकरण है।

सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिये हमारे जीवन का आधार आध्यात्मिक होना जरूरी है। लेकिन इस युग में हमने घोड़ों के आगे रथ को बाँध दिया है। हम सोचते हैं कि शारीरिक जीवन मूल है और आध्यात्मिक जीवन सहयोगी। किन्तु इसे उल्टा ही होना चाहिये था। मनुष्य का आधारभूत जीवन आध्यात्मिक है। स्थूल जीवन तो उसका एक अंग मात्र है। इसी प्रकार हम मानसिक स्तर पर कई गलतियाँ करते आ रहे हैं। सर्वप्रथम तो हमने मन की उपेक्षा की है। यही कारण है कि हम दु:खी और अस्वस्थ हो गये हैं।

जब हम योगमय जीवन अपनाते हैं तो सर्वप्रथम आत्मा हमारे लिये प्रमुख तत्त्व हो जाती है और उसके बाद आते हैं मन तथा शरीर। भौतिक दर्शन में शरीर ही सर्वेसर्वा हो गया है, मगर योग दर्शन के अनुसार शरीर ही अंतिम नहीं है। यह शरीर हमारे अस्तित्व का एक अंग मात्र है। हमें शरीर को स्वस्थ रखना है, मगर औषधियों, पोषक तत्त्वों या भोजन के ही बल पर नहीं, बल्कि हमें उचित विचार, दर्शन, सिद्धांत और विश्वास की पूर्ति करनी है। इससे भी ज्यादा जरूरी यह है कि हम ध्यानयोग को अपनाएँ, क्योंकि इसी से मन विकसित होता है और नाम-रूप की सीमा से निकलकर मनुष्य अनन्त में विचरण करता है। वहाँ शारीरिक स्वास्थ्य की तो बात ही क्या, वहाँ हमारे सामने सभी संभावनायें हाथ पसारे खड़ी होती हैं।

बोगोता, दक्षिण अमेरिका, 27 जून 1979

सत्यम् संस्मरण

श्री स्वामी सत्यानन्द जी की प्रथम शिष्या, स्वामी धर्मशक्ति जी की स्मृति में स्वामी निरंजनानन्द ने प्रत्येक महीने की 13 तारीख को एक विशेष कार्यक्रम निश्चित किया है, जिसमें श्री स्वामीजी से जुड़े संस्मरण, आपबीतियाँ और अनुभव प्रस्तुत किये जाएँगे। मार्च 13 को भागलपुर की श्रीमती कृष्णा देवी द्वारा इस शृंखला के अंतर्गत वर्णित प्रथम संस्मरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

आज मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य है कि अनजाने में ही मैं ऐसे महत्त्वपूर्ण सत्र के शुभारम्भ में रामजी की गिलहरी की तरह शामिल हो गई। हम सबका बहुत बड़ा सौभाग्य है कि हम ऐसे समय पैदा हुए, जब हमने पूज्य गुरुदेव, स्वामी सत्यानन्द जी को देखा, त्याग और तपस्या की मूर्ति, अम्माजी को देखा। इसके लिए ईश्वर को हम धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने हमें ऐसे समय धरती पर भेजा।

स्वामीजी को हमने देखा, पर हम उनके लिये क्या कहें, बड़ा मुश्किल है। उनके लिए कुछ बोलना तो ऐसे ही है जैसे नमक की पुतली सागर की थाह लेने चली। हमें गुरुदेव की ही एक कविता याद आती है –

लवण की पुतली, चली सागर नहाने,
बुद्धि-बल और तर्क के लेकर बहाने,
देखकर यह भ्रम चकित हूँ, मौन हूँ,
कौन हूँ, मैं कौन हूँ, मैं कौन हूँ
शून्य में यह प्रश्न प्रतिपल गूँजता
और मेरा मैं, मुझी से पूछता
कौन हूँ मैं, कौन हूँ मैं,
कौन हूँ, कौन हूँ,
मैं कौन हूँ, मैं कौन हूँ

श्रीगुरुदेव का हमने लगभग चालीस वर्ष पूर्व प्रथम दर्शन किया और उन्होंने मुझे मेरे होने का पता दिया। मैंने उनके भीतर सब कुछ पाया। मैंने उनके भीतर माँ को देखा, पिता को देखा। वे हमारे गुरु तो थे ही, उनके भीतर मैंने अपने इष्ट, भगवान् श्रीराम को भी देखा है। उनके बारे में सोचो तो कोई एक बात नहीं, बल्कि बहुत सारी यादें चारों ओर से घेर लेती हैं।

उनके प्रथम दर्शन के बाद जब हम सन् 1974 में उनके साथ योग सम्मेलनों और कार्यक्रमों में जाने लगे, तब मेरा पुत्र, मानस मेरी गोद में आ गया था, और वह भी

उनके आशीर्वाद से ही आया। उनके साथ हमने बहुत यात्राएँ की और उन यात्राओं में उनके साथ रहकर हमने केवल भक्ति ही नहीं सीखी, केवल कथा ही नहीं सीखी, बल्कि हमने गृहस्थी भी सीखी। जीवन कैसे जीना चाहिए, दिल का दरवाजा कैसे बड़ा बने, मन का छोटापन कैसे दूर हो– उनसे हमने हर एक बात सीखी।

चोट सहो अपमान सहो

एक बार रायपुर जाना था। स्वामीजी यहाँ जमालपुर में बैठे थे, हम भागलपुर से ट्रेन में चढ़े। मानस की दादी माँ स्वामीजी को बहुत मानती थी। वह बहुत अच्छी और बहुत आध्यात्मिक महिला थीं। लेकिन मेरा बाहर जाना उनके लिए परेशानी का सबब बन जाता था, जिसके लिए वे कभी-कभी बहुत ज्यादा गुस्सा भी करती थीं। मैं बहुत घबरा जाती थी कि अब मैं कैसे-क्या करूँ। उनकी सोच अपनी जगह ठीक थी। मेरे साथ मुश्किल यह थी कि मैं कथा के बिना रह नहीं सकती थी।

मैंने स्वामीजी से किसी भी घरेलू समस्या की चर्चा कभी नहीं की थी। जब मैंने उन्हें प्रणाम किया तब मेरी दोनों आँखों से आँसू गिरने लगे। उन्होंने पूछा, 'तुम्हें कोई तकलीफ हो गई है?' मैंने कहा, 'स्वामीजी, माँ बहुत गुस्सा करती हैं। क्या मुझे कथा करना छोड़ देना चाहिए?'

मैं सोचती हूँ कि यदि उनकी जगह कोई भी होता, या तो कहता 'नहीं, तुम्हें नहीं छोड़ना चाहिए' या कहता, 'हाँ, छोड़ देना चाहिए।' लेकिन उन्होंने एकदम तीसरी बात कही और मेरी सारी सोच को पलट कर रख दिया। उन्होंने कहा, 'तुम किसी जंगल में तो जाकर तपस्या नहीं करोगी, रहना तो घर में ही है। सो भगवान तुम्हें तप का एक मौका दे रहे हैं। यदि तुमने उनके गुस्से को सह लिया और फिर भी तुम उनसे उतना ही प्यार करती रही, और उनकी सेवा करती रही, तो तुम्हारा घर में बैठे-बैठे यही तप हो जायेगा और तुम्हारा तप तुम्हें सिद्धि देगा। उनके गुस्से में नाजायज क्या है? एक छोटे-से बच्चे को लेकर तुम बाबा लोग के साथ घूमने जाती हो, क्या तुम्हारी सास को गुस्सा नहीं आयेगा?'

उन्होंने इतने अच्छे ढंग से हमें समझा दिया कि फिर सचमुच हमारे मन पर वह दु:ख आया नहीं। मैं माँ जी से उसी तरह प्यार करती रही और धीरे-धीरे बाबा की दया से ऐसा भी समय आया कि मैं उन्हें साथ लेकर कथा में गई और उन्होंने बहुत प्रेम से कथा सुनी। हमने स्वामीजी से यह बेहतरीन सबक सीखा।

सदैव प्रियदर्शनम्

वैसे देखा जाए तो हमने उनसे क्या कुछ नहीं सीखा। अगर सबको लिख डालूँ तो एक उपन्यास तैयार हो जाएगा। मन में इतनी बातें उमड़ने लगती हैं। पंचाग्नि के समय जब हमने उनका दर्शन किया, अचानक मुझे लगा कि मेरी तो साँस रुक

जायेगी। हम हजारीबाग से कथा करके लौट रहे थे। मुझे लगा कि उन्हें एकदम अभी-के-अभी देखना है। उस समय बाबा रिखिया में जहाँ रहते थे, वहाँ पूछते-पूछते जा पाए। वहाँ पहुँचे, बाहर एक साधु थे, उन्होंने कहा, 'वे तो किसी से नहीं मिलते हैं। आप कैसे आ गए हैं?' हमने कहा, 'आप एक बार जाकर कहिये, अगर वे मना करते हैं, तो मैं लौट जाऊँगी।' वे पूछकर आये, मुझे साथ लेकर गये। मैंने उन्हें सात वर्ष के बाद देखा। मुझे देखते ही हँसे और बोले, आज सुबह ही तुम्हें याद किया था। मैं रोने लगी, मैंने कहा कि आपके याद किये बिना तो कोई आप तक पहुँच ही नहीं सकता। जरूर आपने याद किया था तभी मुझे ऐसा लग रहा था। मैं बहुत रोने लगी।

उनका पूरा शरीर जैसे झुलस कर काला हो गया था। लेकिन सुन्दरता वही थी। बहुत सुन्दर, इतने सुन्दर! वाल्मीकि रामायण में भगवान राम का एक विशेषण है, 'सदैव प्रियदर्शन' यानी राम जी को कभी भी देखो, हमेशा सुन्दर ही लगते थे। मैंने उनको देखा, सदैव प्रियदर्शन। सदैव बहुत सुन्दर। कोई आदमी सदैव प्रियदर्शन नहीं लग सकता।

अभी हम एक जगह भागवत सप्ताह करने गये थे। वहाँ एक महात्मा बहुत सुन्दर थे, लम्बे-चौड़े, गोरे-उजले, लेकिन जब वे रात में सोते हुए खर्राटा लेते थे, तब उनके गुरुजी बोलते थे, 'आपन तेज सम्हारो आपे।' सो क्या कोई हर समय सुन्दर लग सकता है? लेकिन हमारे गुरुजी सदैव प्रियदर्शन थे। हम रोने लगे।

हमने कहा कि आपको इस पंचाग्नि तपस्या की क्या जरूरत थी। आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? मुंगेर छोड़ने की ही क्या जरूरत थी? हम लोग अपने ढंग से सोचते हैं। वे बोले, 'चलो जी चलो! बेड़ी तो बेड़ी है, लोहे की या सोने की। तुमसे पूछकर छोड़ेंगे क्या?' मेरे आँसू गिरते ही जा रहे थे। वे कहने लगे, 'तुम

रोओ। हमारा बन्दरवा का कलेजा है। हम किसी के लिए नहीं रोते।' पर हमें कभी अनुभव ही नहीं हुआ कि उनका बन्दरवा का कलेजा है। इतनी ममता देखी, क्या बतायें, कौन-सी बात कहें?

करुणानिधान सद्गुरु

मुझे शतचण्डी यज्ञ में मानस के विवाह की एक-एक बात याद आती है। जैसे करुणा और कृपा बरस रही थी। उसका अंत नहीं। जो उन्होंने दिया, ऐसी चीज तो सचमुच गुरुदेव ही दे सकते हैं। कबीर बाबा कहते हैं –

काटे कटत नहीं, जारे जरत नहीं
निसदिन रहत हरी, पाँचों नाग पचीसों नागिन,
सूँघत तुरत मरी, गुरुजी मोहिं दीन्हीं अमृत नाम जड़ी।।

गुरु ने ऐसी एक चीज दे दी, जो काटते कटती नहीं है, जलाने से जलती नहीं है और मन हमेशा आनंद में ही रहता है। हमें छोटी-छोटी चीजें कितना परेशान करती थीं, लेकिन जब उनकी नजर हो गई, तब

गमे जहाँ का असर दिल पे अब नहीं होता,
क्योंकि बदल दिया है अब एहसास-ए-ज़िन्दगी मैंने
तेरी निगाह से देखा तो सब हुए अपने
जहाँ में चारों तरफ पाई दोस्ती मैंने
रखी थी मुफ्त में ले सबसे दुश्मनी मैंने

फिर शतचण्डी यज्ञ में हम दो-तीन साल नहीं गये। गुरुजी भी बाहर नहीं आते थे तो जाने का मन नहीं करता था। उसके बाद फिर जब गए तब उनका दर्शन हुआ। उन्होंने हँसते हुए कहा, 'तुम तो नहीं आते हो ना!' मैं हाथ जोड़कर मौन रही। वे बोले, 'क्यों नहीं आते हो?' मैंने कहा, 'आपका दर्शन नहीं होता था, इसलिए नहीं आती थी।' उन्होंने कहा कि मैं तो इसलिए बाहर नहीं निकलता क्योंकि मैं सोचता हूँ कि चण्डी माता और भक्तों के बीच में मैं क्यों रहूँ। सीधे-सीधे तुम लोग माँ से मिलोगे न! मैंने कहा, 'लेकिन मुझे तो आपके बिना चण्डी माँ नहीं चाहिए।' उन्होंने कहा, 'तुम यह कैसी बात करते हो, गुरु का शरीर क्या हमेशा रहता है? लेकिन माँ तो हमेशा रहेगी।' मैंने कहा, 'मैं तो पढ़ी-लिखी हूँ नहीं, इतनी बातें नहीं जानतीं। मैं बिल्कुल अँगूठाछाप हूँ और मैं इतना ही जानती हूँ कि मुझे मेरे मरने के बाद भी आप चाहिए और आपके मरने के बाद भी आप चाहिए। आपके बिना हमारा गुजारा नहीं है। हमारी एक साँस नहीं आ सकती है।' फिर वही हँसी और फिर वही बात, 'जाओ जी! हमारा बन्दरवा का कलेजा है, हमें मत फँसाओ।'

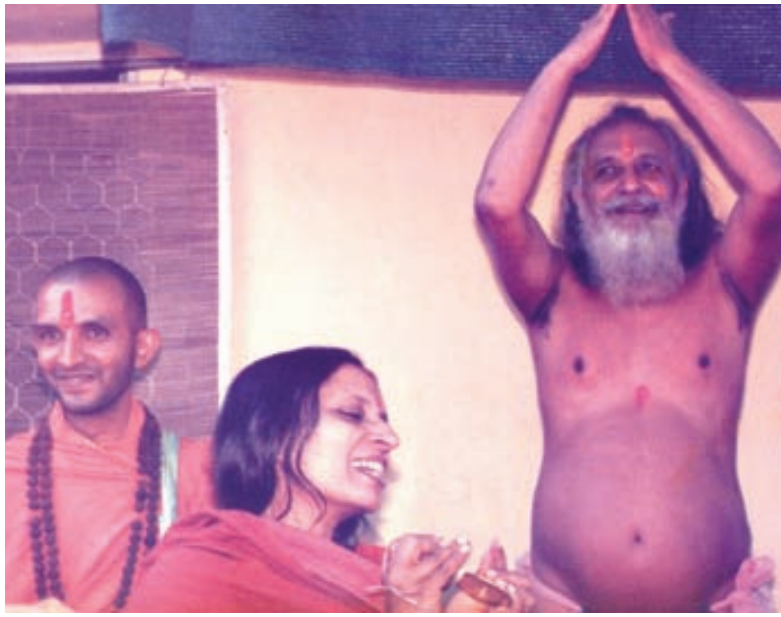

प्यार में तो 'ना' का मतलब हमेशा 'हाँ' ही होता है। यह कोई वेदान्त थोड़े ही है जहाँ नेति-नेति का मतलब 'नहीं, नहीं' हो। गुरुजी ने जब कहा कि जाओ भागो, तब इसका मतलब कि उनके पास हमारे लिए खास जगह है। वे कभी हमें भगायेंगे नहीं, हमेशा दिल के पास रखेंगे। ऐसी बहुत सारी यादें हैं।

फिर श्रीगुरुदेव की महासमाधि का दिन भी आया। लगा कि दुनिया ही उजड़ गई है। अब क्या करें, कहाँ जायें? महीने-डेढ़ महीने तक कोई चीज खाते थे तो लगता था कि मिट्टी खा रहे हैं। किसी चीज का स्वाद नहीं आ रहा था। नींद, भूख, हर चीज गायब हो गई थी। ऐसे में स्वामी सत्संगी जी का फोन आया, 'रिखिया में रामनवमी में कथा के लिए आना है।' हमने कहा, 'अब क्या करेंगे आकर? अब हमारा क्या है? अब तो कहीं कुछ नहीं।' कभी भी याद करने पर उनके साथ जो एक लिंक बनता था, वह भी मेरे हाथ में नहीं था। एकदम जैसे सब कुछ अंधेरा हो गया था। उन्होंने कहा, 'अरे! आप आइये तो सही, आपको आकर अच्छा लगेगा।' सचमुच वहाँ पहले दिन तो बहुत उदासी लगी, बहुत रोना आया। समाधि पर गये। लेकिन फिर जो नौ दिन वहाँ पर गुजरे, प्रत्येक दिन, प्रतिपल उन्होंने अपने होने का बार-बार मुझे सबूत दिया, बार-बार बताया। उस समय हमने स्वामीजी को एक चिट्ठी लिखी कि आपके साथ तो बड़ी सुविधा है कि आप निर्गुणियाँ हैं, तो आप मान लेते हैं कि वे सब जगह हैं। लेकिन हम तो सगुणियाँ हैं। वह हँसी, वह नजर मिसिंग है। हम कहाँ ढूँढ़े, कहाँ जाएँ और क्या

करें? लेकिन जब हम रिखिया गये सब कुछ मिल गया और फिर मन वैसे ही भरापूरा अच्छा-अच्छा लगता है।

अब हम महसूस कर पाते हैं कि वे हमेशा हमारे साथ हैं और हमारे साथ ही नहीं, अपने सभी बच्चों के साथ, अपने सभी भक्तों के साथ हैं। क्या वे कभी जा सकते हैं? श्रीमद्भागवत में ध्रुव जी की चर्चा आती है कि जब उनका मरणकाल आया तब वे मृत्यु के कंधे पर पैर रखकर भगवान के पास चले जाते हैं। जो मृत्यु के कंधे पर पैर रखकर भगवान के पास गये हैं, वे क्या गये और मरण उनका क्या बिगाड़ लेगा। वे तो और भी पॉवरफुल हो गये हैं। हे गुरुदेव! हमको सब प्रकार से अच्छा बनाइयेगा, अच्छा रखियेगा। दुनिया में कोई कहे नहीं कि आपका बच्चा गंदा है। कहीं हमसे कोई गलती मत होने दीजियेगा। खूब अच्छी तरह सम्भालकर रखियेगा और हमेशा हमारे साथ रहियेगा। क्या बतायें कि उनके जैसा कौन है।

अगर तलाश करें कोई मिल ही जायेगा।
मगर तुम्हारी तरह कौन हमको चाहेगा॥

वह प्यार, वह ममता, वह करुणा और वह वात्सल्यता, वे तो साक्षात् भगवान ही हैं और हमेशा हमारे साथ हैं।

हमारा बहुत बड़ा सौभाग्य है कि वे हमें स्वामी निरंजन जी के रूप में एक अपूर्व निधि-संपत्ति दे गये हैं। अभी हम सत्यम् उद्यान में स्वामी निरंजन जी से चर्चा कर रहे थे तो उनसे भी यही कहा कि अब पंचाग्नि मत करियेगा। हम तो अपनी तरह से बोलते हैं, अपनी तरह से सोचते हैं, लेकिन वे उस तरह से नहीं सोचते हैं, क्योंकि वे सड़क पर से रुपया उठाकर धनी नहीं हुए हैं। जैसे कोई सड़क पर पड़े नोट के बण्डल को उठाकर पैसे वाला हो जाता है, वे वैसे नहीं हैं। वे हमारी बात सुनकर हँसते हुए बोले, 'हमें जो लंगोटी विरासत में मिली है, उसकी लाज तो रखनी है ना!'

गुरुवर सत्यानन्द के शुचि पग पदुम पराग।
बार-बार वंदन करौं देहु सरस अनुराग॥

गंगा दर्शन, 13 मार्च 2013

मंत्र विज्ञान

गुरु से प्राप्त मंत्र का जप प्रतिदिन होना चाहिए। प्रतिदिन आपको नियमित रूप से दस मिनट समय निकालकर एक या दो बार मंत्र का जप करना चाहिए। एक या दो घण्टा जप करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन कुछ-न-कुछ समय के लिए दैनिक जप नितान्त आवश्यक है।

एकाग्रता

मंत्र जप करते समय आपको अपना ध्यान एक बिन्दु विशेष, जैसे, नासिकाग्र अथवा भ्रू-मध्य पर लगाना चाहिए। आप अपने मन को अपने जिह्वाग्र अथवा जिह्वा मूल पर लगा सकते हैं, अथवा अपने नासिका-रन्ध्रों में भी मन को बिठा सकते हैं। ये मात्र कुछ उदाहरण हैं। आप अन्य किसी केन्द्र, जैसे, हृदय, नाभि, कण्ठ या ललाट पर भी ध्यान कर सकते हैं।

स्थिरता प्राप्त करने हेतु किसी एक बिन्दु पर मन को केन्द्रित करना आवश्यक है, क्योंकि मंत्र जप के समय आपका हृदय और फेफड़े इस क्रिया में संलग्न हो जाते हैं, साथ ही आपका स्नायु-तंत्र और कभी-कभी अनुकम्पी नाड़ियाँ भी इस क्रिया से प्रभावित होती हैं। मैं ये बातें वैज्ञानिक शोध से प्राप्त परिणामों के आधार पर कह रहा हूँ। अत: मंत्र का अभ्यास करते समय यदि आप शरीर के किसी एक बिन्दु पर अथवा शरीर के बाहरी भाग के किसी बिन्दु पर ध्यान करेंगे तो आपके स्नायु-तंत्र में घटित होने वाले उतार-चढ़ाव में कमी आएगी।

जब आप अपनी आँखें बंद करेंगे तो अनुभव करेंगे कि आँखों की गतिविधियाँ चल रही हैं। आँखों की पुतलियों का घूमना मन की अस्थिरता और चंचलता के समय और तेज हो जाता है। आँखों की पुतलियों की गति की तीव्रता को स्थिर करने की आवश्यकता है। पुतलियाँ जितनी स्थिर हो सकें उतना लाभदायक है। आप पुतलियों की गति को कैसे रोकेंगे? इनको रोकने के लिए एक बिन्दु पर मन की एकाग्रता आवश्यक है। इस हेतु शरीर के बाहरी या भीतरी भाग में एक केन्द्र का चुनाव परम आवश्यक है।

यदि आप मंत्र जप के समय नासिकाग्र पर मन को केन्द्रित करेंगे तो आपकी आंतरिक दृष्टि केन्द्रित रहेगी और पुतलियों की गति कम-से-कम होगी। पुतलियों के हिलने-डुलने का सीधा असर दृष्टि-पटल और मस्तिष्क पर पड़ता है। नेत्र-गोलकों की गतिविधि को आप एक या दो मिनट रोक सकें तो उसके प्रभाव को मस्तिष्क तथा स्नायु-मण्डल में अनुभूत किया जा सकता है।

इसलिए योग में दूसरी क्रिया त्राटक है जिसमें हम अपने सामने कोई स्थिर वस्तु जैसे जलती हुई मोमबत्ती अथवा काला बिन्दु अथवा शिवलिंग रख लेते हैं। उस बिन्दु पर जब हम एक, दो या तीन मिनट तक एकटक देखते जाते हैं और आँखें नहीं झपकाते तो हम नेत्र-गोलकों को अप्रत्यक्ष प्रशिक्षण देते हैं। नेत्र-गोलकों को स्थिर रखना मन को शिथिल करने की एक परोक्ष विधि है।

मंत्र साधना

मंत्र साधना की कई विधियाँ हैं। कुछ मंत्र छोटे और कुछ बड़े होते हैं और कुछ तो काफी दीर्घ होते हैं। गायत्री एक दीर्घ मंत्र है। यह चौबीस स्वरों का संयोजन है। कुछ मंत्र एकाक्षरीय होते हैं, जैसे ॐ, क्लीं अथवा ह्रीं। मंत्र जितना ही लघु होगा उतनी ही उसकी साधना आसान होगी। आप अपने मंत्र को आने-जाने वाली श्वासों के साथ जोड़ें और हर श्वास के साथ अपने मंत्र का अनुभव करें, जैसे, सोऽहं, सोऽहं। मंत्र जप की एक यह विधि है।

मंत्र की दूसरी विधि यह है कि आप माला फेरें और प्रत्येक मनके के साथ मन-ही-मन मंत्र को दुहरायें। मंत्राभ्यास की तीसरी विधि यह है कि भ्रूमध्य में अपना ध्यान केन्द्रित करें। एक छोटा सिक्का लेकर उसे भ्रूमध्य में कुछ देर के लिए चिपका दें तो आप केन्द्रीय बिन्दु को महसूस कर सकेंगे और लय तथा धड़कन का भी एहसास कर पायेंगे। आप धड़कन के साथ मंत्र-जप को महसूस कर सकेंगे। यह सहज और स्वाभाविक लय है। मंत्र-साधना की एक यह विधि हुई।

आप षट् चक्रों पर भी एकाग्रता कर सकते हैं। सभी चक्रों पर एक साथ या अलग-अलग चक्रों पर एक-एक कर ध्यान कर सकते हैं। प्रथम दिन मूलाधार पर, दूसरे दिन स्वाधिष्ठान पर, तीसरे दिन मणिपुर पर...। मन को चक्र पर टिकायें और तब मंत्र-जप मन-ही-मन आरंभ करें। अथवा अपने जिह्वाग्र पर मन को एकाग्र करेंगे तो स्पंदित लय को महसूस कर सकेंगे और उसी के साथ मंत्र-जप कर सकते हैं। इस प्रकार मंत्र जप की कई विधियाँ उपलब्ध हैं।

मंत्र का स्वरूप

हममें से जो शिक्षित और साक्षर हैं, उनके लिए एक प्रकार का मंत्र जप बड़ा कठिन है। संभव है, आप में से कुछ लोग कर भी लें। मान लें, आपका मंत्र 'ॐ नमः शिवाय' है। इस मंत्र का पाठ करते समय स्वाभाविक रूप से आप मंत्र के लिखित अक्षरों के प्रति भी सचेत रहते हैं। यह एक बंधन है। 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का रूप नहीं है। आप भले ही वैसा समझ रहे हों, पर वह एक परिसीमा है।

मंत्र क्या है? मंत्र ध्वनि या नाद है और जब आप मंत्र जप करें तो उसके नाद के प्रति जागरूक रहें, न कि उसके रूप के प्रति। यदि आप लिखित भाषा और लिपि-चिह्न

के आधार पर 'ॐ नम: शिवाय' पर चिंतन करेंगे तो यह सीमित चेष्टा होगी। इसलिए मंत्र को अपनी भाषा और समझदारी के आधार पर ग्रहण किये गये रूप और आकार से मुक्त कर देना चाहिए।

नाद एक शुद्ध स्वरूप है और जब आप नाद को नहीं समझते तो लिखित लिपि-चिह्न क, ख, ग, घ के अनुरूप उसे स्वरूप प्रदान करते हैं। नाद का वह कल्पित रूप है जिसे आपने अपनी सुविधा के लिए गढ़ लिया है। जब आप 'अ' वर्ण लिखते हैं तो आप 'अ' ध्वनि के स्वरूप को नहीं जानते। 'अ' ध्वनि का क्या स्वरूप है? वही स्वरूप नाद-स्वरूप कहलाता है और वह नाद-स्वरूप वैसे लोगों की पकड़ में सहजता से आ जाता है, जिन्होंने कोई पढ़ाई-लिखाई नहीं की है।

यह बात मेरे अनुभव में तब आई जब मैंने एक निरक्षर व्यक्ति को 'ॐ नम: शिवाय' की दीक्षा दी और उसे मंत्र पर ध्यान करने को कहा। उस समय मैंने स्वयं नहीं जाना था कि मैं उसे कितनी शक्तिशाली चीज बता रहा था। कुछ ही दिनों बाद वह विलक्षण अनुभवों के साथ मेरे पास आया। मैंने पूछा, 'किस चीज पर ध्यान कर रहे थे?' उसने जवाब दिया, 'ॐ नम: शिवाय के स्वरूप पर।' तब मैंने पूछा, 'ॐ नम: शिवाय का स्वरूप क्या है?' इस पर उसने कुछ बातें कहीं जो मैं स्वयं नहीं जानता था। शिक्षित होने के कारण मेरे लिए ॐ नम: शिवाय का स्वरूप उसके लिपि-चिह्नों पर आधारित है, लेकिन उसकी समझ इससे कहीं आगे थी। उसने मंत्र को बाह्य अभिव्यक्ति और स्वरूप से बिल्कुल रहित कर दिया था।

अतएव आपके गुरु के द्वारा दिये गये मंत्र का वास्तविक स्वरूप क्या है, उसे आपको पकड़ना है और वहाँ तक पहुँचने के लिए अ-उ-म् न्-अ-म्-अ-ह श-इ-व-आ-य्-अ के अनावश्यक, बाह्य आडम्बरयुक्त स्वरूप से होकर निकलना होगा। चढ़ने के लिए इस सीढ़ी का उपयोग कर उसके आगे तक जाना होगा।

प्रतीक

तब मंत्र के साथ प्रतीक आता है और यह प्रतीक मंत्र से संबंधित है। नाद का एक रूप होता है, जिसपर बहुत सारे प्रयोग भी हुए हैं। कई वर्ष पूर्व जब मैं फ्रांस गया तो वहाँ मैंने एक विख्यात कलाविद् द्वारा लिखी पुस्तक देखी। उस पुस्तक में कहा गया है

कि जब हम नाद उत्पन्न करते हैं, जैसे, ॐ या वार्ता के क्रम में बोलने से जो ध्वनि उत्पन्न करते हैं, उससे आकाश अथवा मन में तरंगें पैदा होती हैं। ये तरंगें अपना एक स्वरूप या ढाँचा निर्मित करती हैं। कभी-कभी ये नाद फूल, पक्षी, पशु, देव या राक्षस का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। नाद और स्वरूप के बीच गहन अन्तर्सम्बन्ध है। वृक्ष, पशु, जीव-जन्तु सभी किसी अदृश्य नाद के स्वरूप हैं।

उनका सिद्धान्त कुण्डलिनी योग और तंत्र के बहुत निकट है। उनका कथन है कि ये आकृतियाँ जिन्हें प्रतीक, यंत्र या मंडल कहते हैं, वे और कुछ नहीं, मंत्र के व्यक्त रूप हैं। प्रत्येक नाद के लिए, प्रत्येक मंत्र के लिए एक साकार रूप है। आपका प्रतीक अग्नि हो सकता है, मेरा देदीप्यमान तारा। प्रतीक गुरु के द्वारा प्रदत्त मंत्र का मूर्त रूप होता है।

अत: जब आप मंत्र का जप करना चाहें तो एक माला लेकर एक नियत समय पर आसन लगाकर बैठ जाइये। तुरंत मंत्र-जप आरंभ न करें, पहले जोर से ॐ का उच्चारण करें। यह तीन या उससे अधिक बार करें। तब एक या दो मिनट तक थोड़ा प्राणायाम कर लें। फिर माला लेकर मंत्र-जप आरंभ करें।

मन की चिन्ता मत करें। विमनस्कता या विक्षेप पर ध्यान मत दें। अभ्यास के आरंभ में यदि मन भटकता है तो अच्छी बात है। यह सकारात्मक लक्षण है। यदि मन में एक भी विचार को जबरदस्ती रोककर कठोरतापूर्वक मंत्र का अभ्यास करेंगे, तो साधना के अगले चरण में आपको समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। यह वैसा ही होगा जैसे अमेरिका की यात्रा की योजना बनाकर बम्बई हवाई अड्डे पर जाने पर यह पता चले कि आप अपना पासपोर्ट घर छोड़ आये हैं। फिर तो आपको पासपोर्ट के लिए वापस घर जाना पड़ेगा!

इसलिए यह जरूरी है कि मानसिक उतार-चढ़ावों और भटकनों, मानसिक उद्विग्नताओं और मन में आने वाले तुच्छ या महत्त्वपूर्ण विचारों को आने दिया जाए। विचार चाहे समूह में आयें या अकेले आयें, जैसे चाहें, वैसे आयें। विचारों के प्रहार से मत घबरायें। यदि आप बाद में चलकर निर्विघ्न और प्रशांत ध्यान चाहते हैं तो आरंभ में विचारों को आने से न रोकें। अपने व्यक्तित्व की गुणवत्ता और प्रकृति को अपने से विलग मत करें। आप जो हैं, वही हैं।

मंत्र-साधना के समय यदि मन भटकने लगे तो कुछ देर जोर से मंत्रोच्चार करें– ॐ नम: शिवाय। मन कहीं भटक रहा है और आप ॐ नम: शिवाय, ॐ नम: शिवाय जपते जा रहे हैं। अचानक आपको एहसास हो जाएगा कि आपका मन कहीं भटक गया है और आप उसे वापस ले आएँगे। एक बार, दो बार, तीन बार, ॐ नम: शिवाय करते हैं और फिर मन भटक जाता है। इस प्रकार साधना बड़े धैर्य के साथ करनी चाहिए ताकि आपको अपनी अन्तरात्मा की अच्छी समझ हो सके।

'योग प्रदीप– 5' से उद्धृत

आत्मभाव

मैं तो हरफन मौला हूँ, लंगोट से लेकर कुछ भी पहन सकता हूँ। मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। चुटिया लगाने से कोई ब्राह्मण नहीं होता, गेरू कपड़े से कोई साधु नहीं होता, साड़ी पहनने से कोई गृहस्थ नहीं होता। नहीं, आदमी तो अपने कर्मों से ही जाना जाता है। मनुष्य की तो एक ही पहचान है – आचार और विचार। आचार-विचार सात्त्विक हों, तो ब्राह्मण हो गया, साधु हो गया। और जिसका आचार और विचार तामसिक हो, वह राक्षस हो गया।

जितने महात्मा हिन्दुस्तान से बाहर गये, सभी को कुछ-न-कुछ परेशानियाँ आयीं। पर मुझे परेशानी एकदम नहीं हुई। विदेश में दस-पन्द्रह साल की लड़की का सिर मुड़ा देता था, क्योंकि मेरा दिल साफ है। मुझे न तो किसी को हिन्दू बनाना है, न किसी को मुसलमान, न किसी को अपना चेला। न ही किसी को ठगना है। मैं ठगूँ किसलिए? मुझे तो लक्ष्मी जी ने ब्लैंक चेक दिया हुआ है। मैं किसको ठगूँगा? एक-दो लाख क्या, मैं तो करोड़ों माँगता हूँ, और वे दे देती हैं। लक्ष्मी जी ने कहा है, 'सत्यानंद, जब तक तू इस पैसे का दूसरों के लिए खर्चा करेगा, मेरा भण्डार तेरे लिए खुला है। जिस दिन तू ये पैसे अपने भोग के लिए लेगा, चेक बाउन्स हो जायेगा।' एकदम पक्की बात है। उन महात्माओं का चेक बाउन्स हो रहा है, जो अपने ऊपर खर्च करते हैं, मक्खन, दूध, दही, फल खाते हैं। मैं तो रोटी और मिर्ची का अचार खाकर मोटा-ताजा बना हुआ हूँ।

हर व्यक्ति का प्रथम कर्त्तव्य दूसरे के प्रति है, और अपने प्रति द्वितीय। वह व्यक्ति जो तुम्हारा अपना नहीं है, जो अपरिचित है, अनजान है, उसके प्रति तुम्हारा पहला दायित्व है, उसके प्रति तुम प्रथम ऋणी हो। अपने परिवार के प्रति तुम्हारा जो दायित्व है, जो ऋण है, वह तो बाद में है, और वह ऋण तो तुम चुका ही रहे हो। पूर्वजन्म का बेटे का ऋण बाप तो इस जन्म में चुका ही रहा है। बेटी का ऋण तो पचास-साठ हजार देकर चुका ही रहे हो। पूर्वजन्म में तुमने जिससे कर्जा लिया होगा, वह बेटा बन कर तुम्हारे घर में आया हुआ है। झूठ बात हो तो यमराज जी से रेफरेंस माँग लेना। पूरी शीट तो उनके पास है।

अब जरा सोचो। जो पूर्व जन्म में तुम्हारा बैरी था, जिसे तुमसे कुछ वसूलना था, उसे तो इस जन्म में तुम सारे का सारा खर्चा दे रहे हो, और जो बेचारा कुछ नहीं है, उसके प्रति तुम्हारे मन में कोई भाव ही नहीं है। एक साड़ी, एक जूता, एक भगोना, एक कड़छी, एक कढ़ाई, एक छाता, एक टॉर्च लाइट, अरे भाई, टी.वी. ही दे देना किसी गरीब आदमी को, क्या फर्क पड़ता है? लेकिन तुम यह सोच नहीं सकते हो।

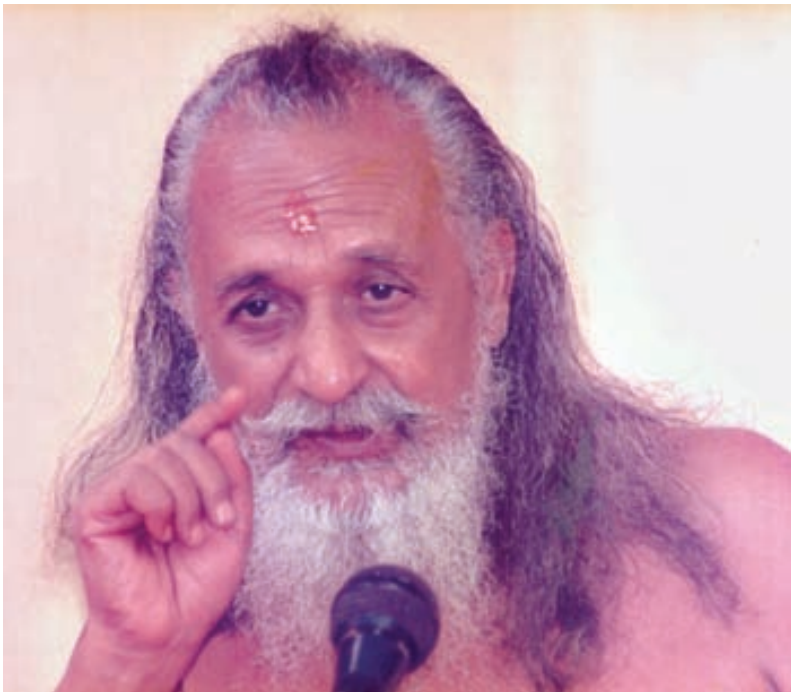

हम तो सीधी बात कहते हैं। भगवान को जानने का जो रास्ता तुमने लिया है, वह द्रविड़ प्राणायाम है। लेकिन हमने भगवान को पाने का राजपथ निकाल लिया है, एकदम नेशनल हाईवे। वह कौन-सा रास्ता है? अपने बारे में मत सोचो। आखिर मैं क्यों सोचूँ अपने बारे में? मेरे बारे में निरंजन सोचेगा।

वेदान्त की कसौटी

मनुष्य का कर्त्तव्य है आत्मभाव। आत्मभाव ही वेदान्त की कसौटी है। लोग यूँ ही बोल देते हैं, मैं ब्रह्म हूँ, तू ब्रह्म है, लेकिन कहने से कुछ नहीं होता। आत्मभाव याने अपने जैसा अनुभव करना। मुझे दर्द, दु:ख, सुख या आनन्द होता है तो कैसा अनुभव होता है? क्या ऐसी ही अनुभूति मुझे दूसरे के बारे में होती है? नहीं होती। हाँ, अपने बेटे के बारे में होती है। जब बच्चा बीमार पड़ता है तो माँ भी बीमार पड़ जाती है। बच्चे का तन बीमार रहता है तो माँ का मन बीमार हो जाता है। क्यों? आत्मभाव जो है। मगर उस आत्मभाव का कारण ममता और मोह है, क्योंकि वह बच्चा उसका है। अगर उसका बच्चा नहीं होता तो वह भाव हो ही नहीं सकता है।

जो आदमी पराये में अपनों जैसा भाव रखता है, वही सच्चा वेदान्ती है। वही परमेश्वर के पास पहुँच सकता है। परमेश्वर का दर्शन रूप में भी होता है, अरूप में

भी होता है, प्रेरणा के रूप में भी होता है, भावना के रूप में भी होता है – कई रूपों में भगवान के दर्शन होते हैं। भगवान के दर्शन का कोई विशेष रूप तो है नहीं। अब अर्जुन को चतुर्भुज रूप में दिखाई दिया, किसी को ज्योति दिखाई दी, किसी को कुछ दिखाई दिया है। दर्शन करने के लिए भगवान को खोजने की जरूरत नहीं है। सूरज को देखने के लिए इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी, जापान, कहीं जाने की जरूरत नहीं है। बस अपनी आँख ठीक करा लो।

दृग् दोष भंजन करा लो, अपनी आँख का ऑपरेशन करा लो, फिर भगवान तो यहीं है। जहाँ तुम हो वहाँ वह है; जहाँ वह है वहाँ तुम हो। किन्तु दिखाई इसलिए नहीं देता कि देखने वाला जो यंत्र है, वह ब्लंट है। वह ब्लंट क्यों है? इसलिए कि उसमें मेरा बेटा, मेरी बेटी, मेरे काका, मेरी काकी आदि भरे हैं। उसमें परमार्थ का भाव नहीं है, स्वार्थ का ही भाव है। स्त्री मेरे लिए, बेटा मेरे लिए, पति मेरे लिए, गुरु मेरे लिए, चेला मेरे लिए, सब मेरे लिए। जब तक यह सारा संसार मेरे लिए है, भगवान को भूल जाओ। चक्कर लगा लो मंदिरों का, कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

हमारे गुरुजी कहा करते थे कि जैसे शिक्षा पूरी करने के लिए मांटेसरी, लोअर प्राइमरी, अपर प्राइमरी, मिडिल, मैट्रिक, कॉलेज और यूनिवर्सिटी के स्तर होते हैं, वैसे ही आध्यात्मिक मार्ग में भी अलग-अलग सोपान हैं। पहला है सेवा, दूसरा है प्रेम, तीसरा है दान। यह पहली तैयारी हो गई। फिर आत्म शुद्धि हो। आँख बंद की, यार की झाँकी दिखी, क्योंकि वह तो वहीं है।

दिल के आइने में है तस्वीरे यार, जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।

भगवान को कहीं से खींचना थोड़े ही पड़ता है। तुम्हारे पूर्वज कहते हैं, तुम्हारे गुरु कहते हैं, तुम्हारे शास्त्र कहते हैं, सब कहते हैं कि भगवान जर्रे-जर्रे में है, कण-कण में है। कोई जगह ऐसी नहीं है जहाँ वह नहीं है। जब ऐसी बात है तो उसे खोजने कहाँ जाते हो? यही सोचो कि मेरे में क्या कमी है। कमी एक ही है कि तुमने प्राइमरी की पढ़ाई की नहीं, मिडिल और मैट्रिक पास किया नहीं, सीधे इंदिरा गाँधी ओपन यूनिवर्सिटी में भर्ती हो गये और एम.एस.सी. की डिग्री ले ली। धत् तेरे की, एम.एस. सी. कर ली फिर भी कुछ नहीं जानते हो तुम!

संन्यासियों का दायित्व

मैं तो भगवान से यही कहता हूँ कि हे भगवान! मुझे कुत्ता बनाना, बकरी बनाना, बिल्ली बनाना, छुछुंदर बनाना, मगर ऐसा इन्सान नहीं बनाना जो जोड़ता ही जाए, जोड़ता ही जाए और जोड़ता ही जाए। मुझे ऐसा इन्सान बनाना जो छोड़ता ही जाए। लंगोटी भी छोड़े, धोती भी छोड़े, छोड़ते ही जाए। यही तो त्याग है। हाँ, सबके अन्दर त्याग की भावना होनी चाहिये। संन्यासी लोगों का अपनी सम्पत्ति के नब्बे

प्रतिशत पर अधिकार नहीं है। नब्बे प्रतिशत दक्षिणा पर दुनिया के गरीब, भूखे, लंगड़े, लूले लोगों का अधिकार है।

संन्यासियों को एक-एक पंचायत लेनी चाहिए। ऐसा गाँव, जहाँ साईकिल भी नहीं जा सकती, बैलगाड़ी भी नहीं जा सकती, वहाँ जाओ। वह तुम्हारा त्याग है, वह तुम्हारी साधना है, वह तुम्हारा तप है। म्युनिसिपल एरिया या नोटिफाइड एरिया में तो रहो ही मत, क्योंकि वहाँ रहने वालों की जरूरतें नकली होती हैं, अनावश्यक होती हैं। टी.वी. की कोई जरूरत है? फ्रिज की कोई जरूरत है? नहीं। मगर वे लोग जो म्युनिसिपल एरिया में नहीं बल्कि गाँव-देहात में रहते हैं, उन्हें मौलिक चीजों की आवश्यकता है। मौलिक अवश्यकता यह है कि हर परिवार को दो रोटी नसीब होनी चाहिए।

साधु-संन्यासियों को अब चिन्तन करना होगा। यदि नहीं करोगे तो जैसे यूरोप में ईसाई धर्म को नई पीढ़ी ने मटियामेट कर दिया, अगले दस साल में तुम को भी मटियामेट कर देंगे। समाज की जरूरत को यदि साधु पूरा नहीं करेगा तो नेस्तानाबूत हो जायेगा। उसकी परम्परा नेस्तानाबूत हो जायेगी। ऐसा इतिहास दिखलाता है।

भारत के समाज की आवश्यकता भौतिक है –रोटी, कपड़ा और मकान। यूरोप और अमेरिका के समाज की आवश्यकता है –ज्ञान। वहाँ पैसा काफी है, इसलिए बैठकर आराम करते हैं और गीता पढ़ते हैं, रामायण पढ़ते हैं, अध्ययन करते हैं। गुरु से मंत्र लेकर दिन भर राम, राम, राम भजते हैं। लेकिन यहाँ आवश्यकता क्या है? गाँव में जाओ और देखो। बच्चों के खाने के लिये कुछ नहीं है। भूखे सोते हैं। हमने देखा है, हम जानते हैं। आप लोगों में बहुत लोग जानते हैं। क्या यह समझने की चीज नहीं है? क्या यह सोचने की बात नहीं है? क्या हम लोगों को यह नहीं सोचना चाहिये कि हम एक तरफ तो कहते हैं कि सारा संसार मेरी आत्मा है और दूसरी तरफ तुम्हारे बगल के घर में कोई बीमार पड़ा है, दु:खी है, खाना नहीं मिल रहा है और तुम लोगों को पता ही नहीं है, तुम इडली, डोसा, सांभर खाये जा रहे हो।

दूसरों के बारे में सोचना शुरू करो, यही धर्म का मूल है। इसे शास्त्र की भाषा में कहते हैं 'परमार्थ चिन्तन'– दूसरों के लिए सोचना और अपने जीवन का, अपनी कमाई, अर्जन, विचारों, सामर्थ्यों एवं संसाधनों का एक हिस्सा समाज के उस वर्ग के लिए लगाना, जो विपन्न, पीड़ित एवं उपेक्षित है, और जिसकी संख्या भारत में चालीस प्रतिशत से ऊपर है। मेरी बात अगर झूठी है तो खुद जाकर देखो। हिन्दुस्तान के गाँवों में चालीस प्रतिशत लोग दो बार खाना नहीं खा सकते। क्या तुम लोगों को इतना भी समझ में नहीं आता? इतनी करुणा तुम्हारे मन में नहीं है, इतनी दया तुम्हारे मन में नहीं है, इतना स्नेह तुम्हारे मन में नहीं है? तुम्हारे प्राण इतने कठोर कैसे हो गये?

'भक्ति योग सागर– 6' से उद्धृत

सत्यम् वाणी

आजकल समाज में बेईमानी और भ्रष्टाचार बहुत बढ़ गया है। इस समस्या का समाधान कैसे हो?

बेईमानी मनुष्य का मूल स्वभाव नहीं है। समाज ही मनुष्य को झूठा, बेईमान, चोर, व्यभिचारी और दुराचारी बनाता है। ये सब चीजें समाज की देन हैं। और कैसे समाज की? जिस समाज में कोई व्यवस्था नहीं है। हमारे समाज में क्या होता है? औरत मर जाती है, आदमी में कोई बदलाव नहीं होता, वह वही कपड़े पहनता है। पर आदमी मर गया तो औरत के कपड़े बदल जाते हैं, गहने उतर जाते हैं। यह कैसी व्यवस्था है? व्यवस्था का मतलब एक ऐसी प्रक्रिया जो तर्क-संगत हो, न्याय-संगत हो।

बैंक में पैसे के हिसाब-किताब की एक व्यवस्था होती है। वहाँ एक मैनेजर होता है, उसके अधिकार और दायित्व निश्चित होते हैं। इसी तरह एसिस्टेंट मैनेजर या कैशियर की जिम्मेदारी निश्चित होती है। पैसे का लेन-देन होगा तो उसे हस्ताक्षर करना होगा। तुम्हारे हजारों-लाखों रुपये तुम्हारे पास नहीं, उसके पास रहते हैं, मगर तुम्हें डर नहीं लगता कि वह लेकर भाग जाएगा। जिसके पास वह पैसा है, क्या वह ईमानदार है? कोई जरूरी नहीं, वह बेईमान भी हो सकता है। लेकिन एक व्यवस्था है जो बेईमानी पर नियंत्रण रखती है। ऐसी व्यवस्था सब जगह होनी चाहिये। परिवार में वह व्यवस्था नहीं है, इसलिये नौकर बेईमान हो जाता है। समाज में वह व्यवस्था नहीं है, इसलिए शासक बेईमान हो जाता है।

वैसे भी राजा के हाथ कभी दूध के धुले नहीं होते, उनमें कहीं-न-कहीं खून लगा रहता है। प्राचीन काल में राजा-महाराजा सेना रखते थे, लड़ाइयाँ लड़ते थे। आजकल लड़ाइयाँ चुनाव के रणक्षेत्र में दलबल के साथ लड़ी जाती हैं। इस लड़ाई में भी पैसा चाहिये, सेना चाहिये। हर नेता को अपना निर्वाचन क्षेत्र जीतने के लिये सेना की आवश्यकता पड़ती है। पहले घोड़े, घुड़सवार, बन्दूक, तलवार, भाले और बर्छे थे, आज का हथियार कुछ और है। आज के हथियार के लिये वह पैसा कहाँ से लायेगा? और उस पैसे पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिये, नहीं तो लड़ ही नहीं सकेगा। अगर हम-तुम चुनाव लड़ें, तुम बीस लाख खर्च करो और हम एक करोड़, तो निश्चित रूप से हम जीत जायेंगे। लड़ाई तो जीतने के लिये लड़ी जाती है न, हारने के लिये कौन लड़ता है?

जब कौरव-पाण्डव या रावण-राम का युद्ध हुआ तो इतनी सेना कैसे बटोरी गयी? आखिर खर्चा तो हुआ होगा न। राम जी कहाँ से लाये वह धन? यह सब तो रामायण में नहीं लिखा है, मगर सोचो कि इतने बड़ी सेना के सदस्य आखिर कुछ तो खाते होंगे, दवा-दारू भी होती होगी, हथियार रहे होंगे। ऐसी बात तो नहीं कि रावण के खिलाफ बिना हथियार के जीत गये। आखिर वह बड़ा बलशाली राजा था। उस समय राजा होता था, आज उसे एम.एल.ए. या एम.पी. कहते हैं। उसे लड़ाई लड़ने के लिए साधन की जरूरत तो पड़ती ही है। इसलिये यह कहना कि फलाना नेता पैसा मारता है निरर्थक है। रह गये अधिकारी लोग, उन्हें तो वैसे ही बहुत कम पैसा मिलता है।

मेरे कहने का मतलब यह है कि गाँवों पर खर्च करने के लिए पहले तो बहुत कम पैसा दिया जाता है, और वह भी गाँववालों तक आते-आते नहीं के बराबर रह जाता है। क्या यह गलत नहीं?

सबसे पहली चीज, हिन्दुस्तान के गाँवों में जितने लोग हैं, प्राय: उन्हें मालूम ही नहीं कि उनके क्या अधिकार हैं, उन्हें क्या करना चाहिये। पढ़ा-लिखा तो कोई है

नहीं। गृहस्थी की गाड़ी में एक टायर पुरुष होता है और दूसरा टायर स्त्री। पर हमारे समाज में दूसरा टायर तो पूरी तरह पंक्चर है। तब गाड़ी कैसे चलेगी? अधिकारों के लिये तब लड़ा जाता है जब अधिकारों की जानकारी होती है। हम किन अधिकारों के लिये लड़ सकते हैं, हमें इसकी जानकारी होनी चाहिये। इस मुद्दे से जुड़ी ऐसी बहुत-सी बातें हैं, इसलिए एक-तरफा बात नहीं कही जा सकती कि सरकार की ही गलती है। जनता की भी गलती है।

राम जी को युद्ध के लिए इतने पैसे कहाँ से मिले?

सुग्रीव से। वे बन्दर थोड़े ही थे, वानर नाम की जाति थी। जैसे मंगोल, अरब, आर्य, हूण, खस या किरात जातियाँ होती थीं, वैसे ही वानर, रीछ आदि दक्षिण भारत की जातियाँ थीं। वे सब अगस्त्य मुनि से प्रभावित थीं, इसलिये भगवान श्रीराम ने सबसे पहले अगस्त्य जी के दर्शन किये। अगस्त्य मुनि तमिल भाषा के जनक माने जाते हैं। उन्होंने ही तमिल व्याकरण बनाया था। उनकी दक्षिण भारत पर जबरदस्त पकड़ थी। जैसे ईसाइयों पर पोप की पकड़ होती है, वैसे ही उनकी पकड़ थी। इसलिये राम जी पहले उनसे मिले ।

रावण बड़ा प्रबल सम्राट् है और उसी ने सीता का अपहरण किया, इसका पहला इशारा जटायु ने दिया, फिर दूसरा इशारा कबन्ध से मिला, तीसरा संकेत शबरी से मिला और चौथा इशारा सुग्रीव से मिला। तब राम जी को लगा कि राजकोष के बिना कुछ नहीं हो सकेगा, किसी तरह राजकोष लेना होगा। बालि वहाँ का बहुत बड़ा राजा था, उन्होंने बालि को हटाकर वहाँ सुग्रीव को बैठाया। आखिर राजगद्दी पर अपना आदमी होना चाहिये न। सुग्रीव दक्षिण भारत का प्रबल सम्राट् हो गया। पूरा-का-पूरा दक्षिण उसके नियंत्रण में आ गया। वानर, रीछ आदि सब जातियाँ सुग्रीव के अधीन थीं।

सुग्रीव को राजा बनाने का एक और कारण था। जैसे रूस और हिन्दुस्तान की मैत्री संधि है, वैसे ही बालि की रावण के साथ मैत्री संधि थी। बालि रावण के विरुद्ध श्रीराम की मदद नहीं करता, इसलिये बालि को हटाना पड़ा।

श्रीराम को अयोध्या से भी कोई उम्मीद नहीं थी, क्योंकि अयोध्या और लंका के बीच दशरथ के पूर्वजों के समय से युद्ध न करने का समझौता था। तुम लोगों को यह इतिहास भले ही मालूम न हो, पर हमने सब पढ़ा है। दशरथ के पूर्वज अनरण्य थे, उनके समय रावण ने अयोध्या पर हमला किया था, जिसमें अनरण्य की मृत्यु भी हुई थी। उसके बाद दोनों पक्षों के बीच युद्ध न करने का समझौता हुआ था। इसलिये अयोध्या और लंका के बीच लड़ाई की कोई सम्भावना नहीं थी। अगर राम जी कहते तो भी लड़ाई नहीं हो सकती थी। प्राचीन काल में जब राजपुत्रों को वनवास दिया जाता था, उस समय वे राज्य की किसी भी चीज का उपभोग या उपयोग नहीं

कर सकते थे। यह उस वक्त का नियम था, आज के नियम भले ही दूसरे हैं। जो राजपुत्र या नायक अपना नहीं हुआ, उसे देश से निकाल देते थे। फिर उसका राज्य पर अधिकार नहीं रहता था। नियमानुसार राम जी का अयोध्या पर किसी भी प्रकार का अधिकार नहीं था। इसलिये उन्हें बालि को हराकर दक्षिण भारत को सुग्रीव के अधीन करना पड़ा।

यह भी तो हो सकता है कि अयोध्या इतनी दूर थी कि वहाँ से सेना का लश्कर नहीं आ सकता था।

आने-जाने की बात नहीं है। सबसे बड़ी बात यह थी कि उस वक्त राजाओं के बीच संधि होती थी, जिसका हर हाल में पालन किया जाता था। हिन्दुस्तान उस वक्त अलग-अलग राज्यों में बँटा हुआ था, जैसे आज अलग-अलग राज्य हैं। हर राज्य का अपना मुख्यमंत्री है, किन्तु दिल्ली केन्द्र है, वहाँ प्रधानमंत्री का शासन है। उस समय उसे चक्रवर्ती बोलते थे। हर युग में अलग-अलग चक्रवर्ती हुए। पाण्डवों के समय चक्रवर्ती सम्राट् हस्तिनापुर में बैठता था, इक्ष्वाकु वंश के समय अयोध्या में। वैसे अयोध्या-नरेश दशरथ का अपना राज्य केवल अवध था। हिन्दुस्तान में बाकी जितने राजा थे, वे राजा दशरथ को अपना सम्राट् मानते थे, जैसे बिहार, बंगाल, तमिलनाडु, आदि के लोग आज दिल्ली को मानते हैं। हाँ, कश्मीर के कुछ लोग दिल्ली को मानने को तैयार नहीं हैं, इसलिए वहाँ झगड़ा हो रहा है, तुम जानते ही हो।

संधि की वजह से राम जी को अयोध्या से कोई मदद मिलने की सम्भावना नहीं थी। पर विन्ध्य से दक्षिण तक जितने राज्य थे, वे अयोध्या से मुक्त थे। उनका अलग संघ था, बालि का संघ। श्रीराम ने सुग्रीव को वहाँ स्थापित किया, वहाँ से उनको राजकोष मिला।

जब अयोध्या के राजा मान्धाता ने लवणासुर के साथ युद्ध किया तो उस युद्ध में मान्धाता मारा गया। उसके बाद अयोध्या का राज्य तो लवणासुर के अधीन होना चाहिये था, पर ऐसा हुआ नहीं। क्यों?

किसी देश को जीत लेने का एक नियम होता है, जो आज तक लागू है। तुम यहाँ से हवाई जहाज ले लो और पूरे पाकिस्तान पर बमबारी कर दो, सब मंत्रियों को मार दो, फिर भी तुम यह नहीं कह सकते कि पाकिस्तान को जीत लिया। पाकिस्तान का विध्वंस कर दिया, मगर उसे जीता नहीं। जीतने का मतलब, तुम्हारी पैदल सेना को देश में प्रवेश करना होगा और जनता का सामना करना होगा। किसी भी राष्ट्र पर विजय का यही नियम है। पैदल सेना को अन्दर प्रवेश करना होगा और अपना झण्डा गाड़ना पड़ेगा। तब माना जायेगा कि उस देश को जीत लिया। सेनापति तो नौसेना का भी होता है और वायुसेना का भी, मगर थलसेना का सेनापति कमांडर-इन-चीफ

कहा जाता है, क्योंकि असली निर्णायक वही है। जब तक वह उस देश में प्रवेश नहीं करेगा, तब तक तुमने वह देश जीता नहीं है। हवाई जहाज या नौसेना किसी देश पर निर्णायक विजय नहीं कर सकती, आज भी यह माना जाता है।

जब श्रीराम ने लंका पर विजय पाई तो अयोध्या का झण्डा नहीं फहराया?

नहीं, श्रीराम ने न लंका को जीतने के लिये रावण पर हमला किया था, न विभीषण को राज्य देने के लिये। केवल सीता जी को मुक्त करने के लिये लंका पर आक्रमण किया था। लंका को जीतकर जब सीता जी को उन्होंने मुक्त कर लिया, फिर उन्हें लंका से क्या मतलब? वहाँ झण्डा क्यों गाड़ेंगे? उन्होंने लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, अंगद आदि को कहा कि जाओ, विभीषण का राज्याभिषेक करा दो, और तब सुग्रीव अपनी पलटन सहित लंका में प्रविष्ट हुए।

इतने सारे राक्षस, वानर और रीछ मरे तो उनकी अंत्येष्टि कैसे हुई होगी? उनकी अन्त्येष्टि के लिए इतनी जगह थी?

युद्ध ऐसे नहीं होता जैसे महाभारत या रामायण धारावाहिक में देखते हो। तुम तो क्षत्रिय जाति के हो नहीं, तुम्हारे माँ-बाप ने तुम्हें युद्ध के बारे में कुछ नहीं बताया। हम तो उस जाति में जन्मे हैं जो हर समय लड़ती रही है। हमारे पूर्वज तो हमेशा लड़ाई में मरे। लड़ाइयाँ ऐसे नहीं होतीं, जैसे तुम समझते हो। लड़ाइयाँ टोली में होती हैं, वह उनसे जूझता है, हम इनसे जूझते हैं, वह उनसे टक्कर लेगा, हम इनसे टक्कर लेंगे। महाभारत धारावाहिक में देखो तो सब एक-दूसरे से लड़े जा रहे हैं। लड़ाई ऐसे नहीं

होती, अलग ढंग से होती है। एक दिन निर्धारित कर लिया कि आज चक्रव्यूह बनायेंगे, अभिमन्यु अंदर चला गया, बाकी सेना इधर-उधर खड़ी है। एक दिन निर्णय हुआ कि भीष्म और अर्जुन का युद्ध होगा, बाकी सब चुप रहेंगे। आज राम और रावण का युद्ध होगा, हम सब चुप रहेंगे।

यह निर्णय कौन लेता है?

सेना के कमांडर होते हैं, उनके निर्णय होते हैं। युद्ध दो प्रकार के होते हैं, एक प्रत्यक्ष, दूसरा छद्म। छद्म युद्ध को आजकल हम अँग्रेजी में गुरिला युद्ध कहते हैं। रामायण या महाभारत में छद्म युद्ध नहीं, प्रत्यक्ष युद्ध था। आमने-सामने निर्णय होता था कि आज का सेनापति कौन है, आज किस शस्त्र का उपयोग होगा, कहाँ पर लड़ाई लड़ी जायेगी, कौन किससे लड़ाई लड़ेगा। उसकी बकायदा घोषणा की जाती थी, क्रिकेट या हॉकी मैच की तरह। उस समय युद्धविद्या में नियम होते थे, जिनमें से कई आज भी लागू हैं।

फिर भी स्वामीजी, हजारों लोग मरते होंगे, उनको उठाना तो मुश्किल होता होगा?

हाँ, उन्हें उठाया जाता था और जो उठाते थे उन्हें योगिनी, वेताल, पिशाच आदि कहते थे। आज वेताल या पिशाच का चित्र तुम्हारे मन में दूसरा बन गया है। उन्हीं लोगों को आजकल हम रेड-क्रॉस कहते हैं। उनका एक पद था, दायित्व था। वे घायलों और मुर्दों को उठाया करते थे और उनके ऊपर हमला नहीं होता था। आज भी रेड-क्रॉस की गाड़ियाँ जब लड़ाई के मैदान में जाती हैं, कोई उन पर गोली नहीं बरसा सकता, यह आदेश है। यह अन्तरराष्ट्रीय कानून है कि घायल आदमी की जो सेवा करे उस पर हमला नहीं किया जाए। जिस अस्पताल में घायल लोग हों, उस अस्पताल पर हमला न हो। आज भी यह नियम है। कभी-कभी नियम का उल्लंघन हुआ है, मगर अन्तर्राष्ट्रीय कानून के मुताबिक उसे वर्जित मानते हैं। अब तो एक कानून और हो गया है, पत्रकारों पर भी हमला नहीं हो सकता। उन्हें सुरक्षा दी जाती है। आजकल अफगानिस्तान या बोस्निया में जो युद्ध हो रहा है, उसे ज्यादातर महिला

पत्रकार ही कवर कर रही हैं। पत्रकार किसी भी कमांडर से मिल सकता है, इस तरफ के कमांडर से भी, उस तरफ के भी, उसकी पूरी सुरक्षा होती है। उसे कोई हाथ नहीं लगा सकता। उसके पास पहचान-पत्र होता है। वह इससे भी पूछ सकता है, उससे भी। फिर खबर करता है, उसे खबर देने की पूरी आजादी है।

ये युद्ध के कानून हैं जो सब जगह माने जाते हैं। प्राचीनकाल में भी इन नियमों का पालन किया जाता था। जो युद्ध के लिये नहीं खड़ा है, उस पर हमला नहीं होगा, चाहे वह तुम्हारा जानी-दुश्मन ही क्यों न हो। कर्ण पर हमला अनुचित था, इसलिये उसने विरोध किया, 'मैं निहत्था हूँ, मेरे ऊपर हमला क्यों हो रहा है? यह धर्म के विरुद्ध है।' मगर श्रीकृष्ण की जबान बड़ी तेज थी। वे तर्क देने में बहुत कुशल थे। उन्होंने कहा, 'जब तुम द्रौपदी का चीरहरण कर रहे थे, तब तुम्हें धर्म याद नहीं आया। अब तुम्हारी जान पर आ बनी है, तो तुम धर्म और कानून की दुहाई दे रहे हो। अगर तुम्हें कानून की दुहाई देनी है, तो सब जगह देनी चाहिये।' फिर अर्जुन से कहा, 'मार दो इसे। यह आज मरा तो मरा, नहीं तो कभी नहीं मरने वाला। जिसको जो बोलना है बोले, देखा जाएगा।'

महाभारत युद्ध में भीष्म पितामह तो अर्जुन के सिवाय किसी पर हमला ही नहीं करते थे। उन्होंने कहा था कि रोज दस हजार सैनिक मारेंगे और महारथियों में केवल अर्जुन से लड़ेंगे, अन्य पाण्डवों में से किसी को नहीं मारेंगे। कहने का मतलब युद्ध जंगल की चीज नहीं है, उसमें भी कानून और नियम होते हैं। आज भी नियम प्राय: वही हैं, जो आज से पाँच हजार साल पहले थे। थोड़ा बहुत अंतर हो सकता है। कहीं-कहीं पर अपवाद भी हुए हैं, लोगों ने गलतियाँ की हैं। जापान पर जो परमाणु बम गिराया गया, इतिहास उसकी सदा निन्दा करेगा, क्योंकि वह युद्ध शास्त्र के विरुद्ध था।

काव्य शास्त्र पर

रामचरितमानस पूरी की पूरी कविता ही है। प्राचीन काल में पद्य गद्य से अधिक महत्त्व रखता था। जब से किताबें छपने लगीं, तब से गद्य का प्रयोग किया जाने लगा। पर गद्य की अपेक्षा पद्य दिमाग में जल्दी बैठ जाता है। तुम रामचरितमानस को कण्ठस्थ कर सकते हो। पर इसी को गद्य शैली में कर दो तो तुम्हें याद नहीं रहेगा, क्योंकि गद्य छंदबद्ध नहीं होता, वह भाषाबद्ध होता है। कविता छंदबद्ध होती है और छंद लय में चलता है। मस्तिष्क में जो विद्युत-चुम्बकीय क्रियाएँ होती हैं, वे तरंगों में चलती हैं, उनकी लय होती है और काव्य भी ऐसे ही चलता है। गद्य में वह नहीं होता, इसलिये गद्य लोगों को याद नहीं हो पाता। गाने कितनी जल्दी याद हो जाते हैं। गाँव में पीढ़ी-दर-पीढ़ी गाते आये हैं, वे सबको याद रहते हैं।

काव्य शास्त्र तो आदिकाल से चला आ रहा है। वाल्मीकि ऋषि को हम लोग आदिकवि कहते हैं। इतिहास में यह माना जाता है कि मनुष्य ने लिखने से पहले

चित्र बनाना सीखा। और गद्य के पहले उसने पद्य कहना सीखा। हो सकता है प्राचीन काल में वार्त्तालाप पद्य रूप में होता हो। सम्भव है कि विश्वामित्र और राम जी के बीच संवाद कविता में ही हुआ हो। क्या मालूम? पद्य में शब्द बहुत कम खर्च होते हैं, जबकि गद्य में बहुत-से व्यर्थ के शब्द आ जाते हैं। अभी मैं आप सब से बात कर रहा हूँ, बहुत लम्बा करना पड़ता है। कविता में किफायत से बोल सकता हूँ।

हम लोगों के यहाँ प्राचीन काल सूत्रकाल रहा है – ब्रह्मसूत्र, योगसूत्र, वास्तुसूत्र, नीतिसूत्र, कामसूत्र – इस तरह के बहुत सूत्रों का प्रचलन हुआ। इन सूत्रों में पूरे-के-पूरे विषय को एक छोटी-सी पंक्ति में कह दिया गया है। जैसे *योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः*, चार शब्द मिलाकर एक विचार दे दिया। सूत्रकाल में गुरुजन लम्बे-लम्बे व्याख्यान नहीं देते थे, बल्कि शिष्य को एक छोटा-सा सूत्र कह देते थे। लेकिन आजकल हर विषय को, चाहे वह कानून हो, साहित्य हो, चिकित्सा हो या इंजीनियरिंग, उसे विस्तार से समझाना पड़ता है। इसीलिये आजकल अधिकांश लोग गद्य का इस्तेमाल करते हैं। लेकिन कविता फिर भी ज्यादा अच्छी लगती है, *काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।*

रिखियापीठ, 14 नवम्बर 1997

करुणासागर गुरुदेव

श्री काशी प्रसाद राजगढ़िया, मुंगेर

गंगा दर्शन, पादुका दर्शन एवं रिखियापीठ के वर्तमान भव्य एवं सर्वसुलभ साधन-सम्पन्न स्वरूप का अवलोकन करने से आज के हर व्यक्ति के मन में यह भाव जाग्रत होगा कि ऐसी संस्था के संस्थापक, परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी का जीवन बहुत सुविधाजनक, वैभवपूर्ण, सुखमय रहा होगा। किन्तु श्री स्वामीजी ने जो अभावपूर्ण, कष्टप्रद विपन्नता का जीवन जिया और हँसते हुए सभी कष्टों को सहनकर मानवता को पुन: योग की संस्कृति देने का अपना स्वप्न साकार किया, यह एक अद्‌भुत मिसाल है। लोगों को जो शान्ति, आनन्द और सुखमय जीवन योग के माध्यम से प्राप्त कराया है, यह तो कोई अवतारी ही कर सकता है।

दीवान बहादुर केदारनाथ जी गोयनका के सम्पर्क में आने के पूर्व भी श्री स्वामीजी मुंगेर आते थे। कई बार तो उन्होंने गंगा दर्शन में, जो उस समय कर्ण चौरा के नाम से जाना जाता था और किंवदन्ती के अनुसार राजा कर्ण जिस चबूतरे पर बैठकर सवा मन सोना अपनी प्रजा को दान करता था, उसी चबूतरे पर कई बार शयन कर रातें काटी थीं। उस चबूतरे पर स्वामीजी को कई दिव्य अनुभव हुए। उन्होंने यही पर संकल्प लिया कि जहाँ राजा कर्ण बैठकर सोना दान करता था, वहाँ से मैं विश्व को शान्ति बाँटूँगा और योग को भविष्य की संस्कृति के रूप में विकसित करूँगा।

1960 के दशक में योग के बारे में यह भ्रामक धारणा प्रचलित थी कि यह साधु-संन्यासियों का विषय है, गृहस्थों और महिलाओं को योग का अभ्यास नहीं करना चाहिए। ऐसे समय श्री स्वामीजी ने जनसाधारण के लिए योग की उपयोगिता सिद्ध की।

गोयनका जी के सम्पर्क में आने के बाद श्री स्वामीजी गंगा किनारे बने उनके आनन्द भवन के अन्दर गोल कोठी में रहने लगे और इसी जगह उन्होंने बिहार योग विद्यालय के निर्माण के पूर्व चातुर्मास किया था। इस चातुर्मास के समय भक्तों को प्रात: आसन-प्राणायाम सिखाया जाता एवं दोपहर सत्संग होता। चातुर्मास के दिनों में मुंगेर नगर के कई परिवारों से लोग आने लगे। इसी समय मेरे बड़े भाई, स्व. विश्वनाथजी राजगढ़िया एवं बड़ी बहन, बुल्लो देवी भी स्वामीजी के सम्पर्क में आये। वे श्रीस्वामीजी के व्यक्तित्व से बहुत अधिक प्रभावित हुए और इस बात की चर्चा समाज एवं नगर के संभ्रांत परिवारों में होने लगी। बुल्लो देवी का नगर की महिलाओं में बड़ा सम्मान था। उनकी कोई औलाद भी नहीं थी। वे अधिकतर महिलाओं से मिलने-जुलने का कार्य करतीं और उनके पारिवारिक कार्यों में सहयोग देती थीं।

19 जनवरी 1964 को बसन्त पंचमी, सरस्वती पूजा के शुभ मुहूर्त्त में आश्रम का उद्घाटन हुआ एवं अखण्ड ज्योति बड़े हॉल में प्रज्वलित की गई। इसके बाद नि:शुल्क 15-15 दिनों का सत्र प्रारम्भ किया गया। इन सत्रों में स्वामीजी स्वयं क्लास लेते थे। चौथे दिन शंख-प्रक्षालन, कुंजल क्रिया एवं नेति करायी जाती। इन अभ्यासों से पेट बिल्कुल साफ हो जाता था। शंख-प्रक्षालन के पश्चात् आसन करने में बहुत मन लगता तथा हर व्यक्ति अधिक ऊर्जावान् एवं प्रफुल्लित अनुभव करता। बुल्लो देवी के प्रयास से प्रारम्भ में बहुत-सी महिलायें एवं बच्चे इन सत्रों में आने लगे। सत्र के बाद प्रतिभागियों के प्रफुल्लित व्यवहार को देखकर लोग और अधिक संख्या में भाग लेने लगे। आसन-प्राणायाम के 15 दिनों के अभ्यास से ही लोगों को जो स्वास्थ्य एवं ऊर्जा की प्राप्ति होती उससे उनके मन में श्री स्वामीजी के प्रति श्रद्धा और सम्मान बढ़ने लगा। उन्हें लगता कि थोड़ा हाथ-पैर हिलाने से मनुष्य कैसे इतना अधिक ऊर्जावान् हो सकता है। उन्हें लगने लगा कि श्री स्वामीजी दैवी शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति हैं, जिनके स्पर्श मात्र से शक्ति की प्राप्ति होती है। बुल्लो देवी का भी सम्मान बढ़ गया।

बुल्लो देवी ने इस बीच एक लड़का गोद ले लिया, उनकी अपनी कोई सन्तान जो नहीं थी। लड़के का विवाह तय हुआ और विवाह बड़े धूम-धाम से हुआ। विवाह के कुछ महीने बाद ही लड़का अपने साथियों के साथ मुंगेर के कष्टहरणी घाट पर गंगा स्नान करने गया था और दुर्भाग्यवश नहाते समय गंगा में डूब गया। दो घण्टे बाद उसका शव मिला। उसे लेकर तुरन्त अस्पताल ले गये लेकिन डॉक्टरों ने मृत घोषित कर दिया। बुल्लो देवी का रोते-रोते बुरा हाल था। नगर की सैकड़ों महिलायें उनके घर पर जमा थीं। कुछ महिलाओं ने श्री स्वामीजी से जीवनदान प्राप्त करने का सुझाव दिया। नगर के कई पुरुष-महिलायें श्री स्वामीजी के पास इस प्रार्थना के साथ पहुँच गये।

श्री स्वामीजी के पास उस समय श्री डी.एन. गुप्ता एवं मैं स्वयं मौजूद था। हमने स्वामीजी को इस अवसर पर बुल्लो देवी के घर न जाने का अनुरोध किया। लड़का मर चुका था और उसके जीवित होने की कोई उम्मीद नहीं थी। ऐसी स्थिति में श्री स्वामीजी के वहाँ जाने से बड़ा उपहास होने का डर था। बुल्लो देवी के घर न जाने के हमारे सुझाव के बावजूद भी श्री स्वामीजी शीघ्रता से उठे और बुल्लो देवी के घर के लिए प्रस्थान कर गये। मैं भी उनके साथ हो लिया।

घर पहुँचकर श्री स्वामीजी ने बड़े ही गम्भीर, स्नेहपूर्ण और शान्त भाव से बुल्लो देवी से कहा कि अगर लड़के की आयु शेष बची होगी तो वह अवश्य जी उठेगा, लेकिन अगर इतनी ही आयु मिली होगी तो इसका दाह-संस्कार करना उचित होगा, ताकि उसकी आत्मा को कल्याण एवं शान्ति प्राप्त हो। उन्होंने आगे कहा कि पत्थल कोयले की एक अंगीठी जलाकर लड़के के सिरहाने रखनी है। एक घण्टे के अन्दर लड़का जीवित नहीं हुआ तो समझ लेना की इतनी ही आयु मिली है, तथा इसका दाह संस्कार करना उचित है। इतना कहकर श्री स्वामीजी वहाँ से चले आये।

लोगों के मन में लड़के के जीवित होने की आशा जगी और तत्काल एक पत्थल कोयले की अंगीठी जलाकर लड़के के सिरहाने रखी गयी। अंगीठी की गर्मी से लड़के की सिर की नसें तनने लगीं, लगा कि जान वापस आ रही है। लोगों में कौतूहल बढ़ा, किन्तु धीरे-धीरे पूर्ववत् स्थिति हो गई। बुल्लो देवी बड़े ध्यान से यह सारा घटनाक्रम देख रही थी। अचानक उन्होंने रोना बन्दकर शव के पास जाकर कहा, 'इसकी आयु पूर्ण हो गयी है। अब शेष कुछ नहीं है। इसके कल्याण के लिए दाह संस्कार की तैयारी की जाए।' वहाँ खड़ी महिलाओं ने भजन करना शुरू कर दिया।

मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जहाँ मुझे श्री स्वामीजी के उपहास का डर और चिन्ता सता रही थी, उसके विपरीत लोगों के मन में श्री स्वामीजी के प्रति अधिक श्रद्धा और आदर का भाव था। श्री स्वामीजी की सभी प्रशंसा करते दिखे। मैंने यह पाया कि श्री स्वामीजी में वह अलौकिक शक्ति थी जिससे किसी भी घटना के परिणाम का पूर्वाभास उन्हें हो जाता था तथा उनकी उपस्थिति मात्र से मंगलमय वातावरण बन जाता था। हमारी सलाह पर स्वामीजी बुल्लो देवी के घर नहीं जाते तो उसका परिणाम बहुत बुरा होता। लोग शायद यह सोचने लगते कि संकट के समय स्वामीजी ने अपने शिष्यों की सुध नहीं ली। श्री स्वामीजी की कृपा से बुल्लो देवी का शेष जीवन बहुत ही सुखमय एवं शान्तिपूर्ण रहा। उनकी विधवा पुत्रवधू में भी सेवाभाव जगा और भजन-कीर्तन, रामायण पाठ आदि के साथ अपना जीवन-यापन करती है। उन्होंने अपने घर को भी सत्संग भवन में परिणत कर दिया है।

गृहस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम

अद्वैत अवस्था, निर्विकल्प समाधि या 'सियाराममय सब जग जानी', यह सब एक जन्म में प्राप्त होने वाली चीजें नहीं हैं। जैसे डॉक्टर बनने में तुम्हें 15-20 साल लगे, सबसे पहले तुमने अक्षर ज्ञान, वर्ण माला, इत्यादि सीखा, वैसे ही किसी को भी एक ही जन्म में परम ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, वह चाहे तुम हो या हम हों।

सन् 1947 में 12 सितम्बर को जब हमने संन्यास लिया, तो स्वामी शिवानन्द जी ने हमें क्रिया योग की शिक्षा दी; जो भी बताना था, वह सब कुछ बताया, किन्तु उन्होंने कहा कि अभी तुम्हें चालीस साल रुकना चाहिए क्योंकि तुम्हारे कर्म शेष हैं, तुम्हारी इच्छाएँ शेष हैं। और हम ठीक चालीस साल तक रुके। हमने सन् 1988 में आश्रम छोड़ा और यहाँ आ गये।

जब तक मनुष्य की इच्छाएँ, वासनाएँ और कर्म शेष रहते हैं, तब तक उसे भक्ति मार्ग में चलना चाहिए। भक्ति मार्ग का मतलब होता है, पूजा, पाठ, जप, सत्संग। योग मार्ग में आसन-प्राणायाम सबके लिए होता है, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह का अभ्यास अपने वर्ण-आश्रम के मुताबिक करना चाहिए। धारणा, ध्यान, समाधि, ये राजयोग की क्रियाएँ हैं, यह अष्टांग योग है जिसका अभ्यास भक्ति योग के बाद ही किया जाता है। तुम मूल शास्त्रों को पढ़ो, योग का अभ्यास कब शुरू होता है? महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों में तो लिखा है, *अथ योगानुशासनम्*। यहाँ अथ शब्द का मतलब है, अब इसलिए। तुमने बी.ए. पास कर लिया है, इसलिए अब तुम अगली कक्षा में जाओ, एम.ए. करो। अब तुमने भक्ति योग का अभ्यास कर लिया है, इसलिए अब तुम्हें योग का अनुशासन बताते हैं।

सब सूत्रों में ऐसा ही लिखा है। ब्रह्म सूत्र का पहला सूत्र है, *अथ अतो ब्रह्मजिज्ञासा,* अब हम ब्रह्म के ज्ञान की जिज्ञासा करते हैं। 'अब हम' माने तुमने भक्ति योग का अभ्यास भी किया, तुमने राज योग की साधना भी की, अब तुम वेदान्त का अध्ययन और अभ्यास करो। यह जो अभ्यास शास्त्र है हम लोगों के वैदिक धर्म में, जिसे तुम योग कहो, ज्ञान कहो या वेदान्त कहो, यह एक जन्म का नहीं है। इस अवस्था को पाने के लिए ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य आश्रम में, गृहस्थ गृहस्थाश्रम में और संन्यासी संन्यास अवस्था में साधना करे।

एकीकृत साधना

जब संन्यासी गुरु से दीक्षा लेकर गुरु के आश्रम में झाड़ू लगाता है, रसोई बनाता है, बैंकिंग करता है, टाईपिंग करता है, एकाउंटिंग करता है, भवन-निर्माण करता है, तब उसने वही काम किया, जो गृहस्थ लोग संसार में करते हैं। उसी तरह से गृहस्थ

आश्रम में रह कर संन्यासी का कर्म करना चाहिए। इसे कहते हैं एकीकरण। जब हमने गुरुजी से दीक्षा ली, तो क्या किया? बैठ गये क्या? नहीं। गुरुजी का आश्रम बनाया, उनका पैसा सम्भाला, उनका रसोई घर सम्भाला, गाय के लिए घास काटी, बैल चराये, गाड़ी चलाई, दूध निकाला। बारह साल तक उनका काम किया। फिर अपना आश्रम बनाया तो अपने आश्रम में काम किया। संन्यासी, संन्यास आश्रम में गृहस्थ आश्रम की तरह रहे। उसी तरह गृहस्थ को गृहस्थाश्रम में रहकर संन्यास आश्रम के धर्म का पालन करना चाहिए।

संन्यास धर्म क्या है? गेरू कपड़ा पहनना, सिर मुड़ाना, माला पहनना, यह संन्यास धर्म नहीं, यह तो संन्यास सम्प्रदाय है। सम्प्रदाय और धर्म में अन्तर होता है। जब गृहस्थ और संन्यास आश्रम को मिलाया जाता है, तब खिचड़ी बनती है जो सुपाच्य होती है। गीता ने इसे स्पष्ट किया है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन से कहते हैं, *ज्ञेय: स नित्यसंन्यासी।* नित्य का मतलब क्या होता है? जो न सिर्फ दिन को या रात को, बल्कि सदा रहता है। संन्यासी किसे कहते हैं? श्रीकृष्ण कहते हैं, 'हे अर्जुन, काम करना तेरे बस में है, बगीचा लगाना तेरे बस में है, शादी करना तेरे बस में है, दुकान खोलना तेरे बस में है, मगर तूने जो बगीचा लगाया उससे तो फल निकलेगा ही, वह तेरे बस में नहीं है। शादी की है तो बच्चा होगा ही, यह तेरे बस में नहीं है। दुकान खोली तो लाखों-करोड़ों बनेंगे, यह तेरे बस में नहीं है। अर्जुन कर्म करना तेरे बस में है, इतना अधिकार है तुम्हें, मगर इससे उत्पन्न होने वाले परिणाम तेरे अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं।'

यह है गृहस्थ और संन्यास धर्म का योग। केवल गृहस्थ धर्म क्या है? बगीचा लगाओ और दिन भर बोलो फल चाहिए, पैसा चाहिए, नहीं मिले तो सर पटको। आशाओं को लेकर जीवन व्यतीत करना, और आशाओं की पूर्ति न होने पर निराश हो जाना, दिल का टूट जाना, यही तो गृहस्थ आश्रम है। कर्म करना और फल की चाह रखना, यही विशुद्ध गृहस्थ आश्रम है। जबकि कर्म नहीं करना, और फल की चाह भी न होना, यह विशुद्ध संन्यास आश्रम है। इन दोनों का योग यह हुआ कि कर्म करो गृहस्थ की तरह और फल की आशा न रखो संन्यासी की तरह। जो होगा देखेंगे, मिलेगा तो बढ़िया, नहीं मिलेगा तो चलेगा। यही गीता का बीज मंत्र है –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा तेऽसंगोस्त्वकर्मणि ॥

हे अर्जुन, तुम संन्यासी की तरह कर्म का त्याग नहीं करना और गृहस्थ की तरह फल के पीछे भी न पड़े रहना। फल के पीछे पड़ जाओगे तो पतन ही होगा। किसी को हृदय की बीमारी हो रही है, किसी को तनाव हो रहा है, किसी को रक्तचाप हो रहा है, सब पागलपन है। साधना के बारे में कभी गलती नहीं करना। तुम कितनी

भी साधना करो, दिन-रात साधना करो, भांग चढ़ाकर साधना करो, अफीम पीकर साधना करो, कुण्डलिनी जगाने की साधना करो, मगर *'समय पाय तरुवर फले, केतिक सींचो नीर।'* साधना धीरे-धीरे होती है, इसमें धैर्य और नियंत्रण की जरूरत पड़ती है।

गृहस्थ आश्रम अपने आप में एक बहुत बड़ी साधना है। बाप ने लड़के को पढ़ाया-लिखाया और पढ़-लिखकर लड़का बाप को जवाब देता है। अब क्या करें, दो-चार थप्पड़ मारें या सहन करें। सहन करना ही अच्छा है। यह सहनशीलता की शिक्षा हो गई। पति-पत्नी, जन्म-जन्म के साथी, उनके बीच दिनभर नोंक-झोंक चलती है, क्या करें जी, समझें या ना समझें? समझना ही पड़ता है। गृहस्थ आश्रम में क्षमा, सहनशीलता और तितिक्षा जैसे बहुत-से मजबूत बनाने वाले सद्गुणों का उपार्जन होता है। इन्द्रियों का दमन भी तो गृहस्थ आश्रम में करना पड़ता है। बाल-बच्चे हुए तो पैसा बचाना है, चलो थोड़ा-सा कम खर्च करें। नहीं होता है क्या?

गृहस्थ आश्रम में साधक उन्हीं गुणों का उपार्जन करता है जो आगे जाकर साधना के मार्ग में विघ्नों को दूर करते हैं। बिना सद्गुणों का उपार्जन किये, बिना व्यक्तित्व का परिष्कार किये यदि तुम ध्यान करोगे तो सीधे राँची के पागलखाने पहुँच जाओगे। साधक को बहुत मजबूत होना पड़ता है, उसका दिमाग बहुत मजबूत होना चाहिए। किसका दिमाग मजबूत होता है? जो आदमी क्षमा करना जानता है, सच में उसका दिमाग मजबूत है। जब तक तुम्हारा दिल और दिमाग मजबूत नहीं होगा, तुम दूसरे को क्षमा करोगे क्या? कमजोर आदमी क्षमा कर सकता है क्या, सहन कर सकता है क्या, दया कर सकता है क्या?

क्षमा सोहती उस भुजंग को जिसके पास गरल है ।
उसको क्या जो दन्तहीन, विषरहित विनीत सरल है ॥

दया और करुणा किसके अन्दर होती है? बच्चे का कौन माँ त्याग कर सकती है, कमजोर माँ या मजबूत माँ? त्याग, तितिक्षा, दया और क्षमा जैसे गुणों का उपार्जन साधना के पहले निश्चित रूप से करना चाहिए।

साकार उपासना

ध्यान का जोखिम कभी नहीं लेना। गुरु के बिना तो बिल्कुल ही नहीं लेना। साधना मनमुख नहीं होती, गुरुमुख होती है। गुरु की जरूरत सब जगह है। यदि कोई चोरी-डकैती करना चाहता है, तो उसे भी गुरु की जरूरत पड़ती है। बिना गुरु के विद्या सफल नहीं होती। यह बात हमेशा ध्यान रखने की है। दूसरी बात यह है कि ईश्वर को पाने की जल्दी किसी को नहीं करनी चाहिए। यह *'चट मंगनी, पट विवाह'* की तरह नहीं होता। ईश्वर इतना सूक्ष्म तत्त्व है कि ऋषि-मुनियों ने इसके बारे में अन्तिम

वाक्य *'नेति, नेति'* कहा है। नेति माने पता नहीं चला। जब ऋषि-मुनियों को भगवान के अनन्त स्वरूप का पता नहीं चला, तब उन्हें अहसास हुआ कि भगवान का साकार रूप भी हो सकता है। भगवान सिर्फ निराकार नहीं है। वह निराकार भी है और साकार भी। वह सर्वाकार है। पानी बर्फ भी बनता है और पानी भी रहता है। जब उन्हें यह तथ्य पता लगा तब उन्होंने साकार उपासना शुरू की।

गृहस्थ और संन्यासी, दोनों को साकार उपासना करनी चाहिए। आदिशंकराचार्य तो अद्वैतवाद के प्रतिपादक थे, फिर भी उन्होंने देवी जी, शिव जी और विष्णु जी के कितने स्तोत्र लिखे हैं। अन्नपूर्णा स्तोत्र भी तो उन्हीं की रचना है न? आखिर उन्होंने साकार उपासना क्यों की? उन्होंने शृंगेरी मठ में माँ शारदा को क्यों प्रतिष्ठित किया? शारदा के विग्रह के बदले निराकार लिंगम् रख देते। पर नहीं, उन्होंने ऐसा नहीं किया।

भगवान का साकार रूप दुर्लभ है, क्योंकि समझ में ही नहीं आता कि साकार भगवान कैसे हैं? जबकि भगवान का निराकार रूप सुलभ है, क्योंकि निराकार कहते ही झट से समझ में आ जाता है। उसे सब स्वीकार कर लेंगे, कोई भी 'न' नहीं कहेगा, न मुसलमान, न ईसाई, न पारसी, न यहूदी। लेकिन साकार की बात कहोगे तो लोग बहुत-से सवाल खड़े करेंगे। भगवान राम कैसे थे, कृष्ण जी कैसे थे, क्या रामकृष्ण परमहंस सचमुच भगवान के अवतार थे? इसलिए साकार बहुत ही दुर्लभ है। पर एक बार तुम्हारी मति साकार भगवान में निश्चित हो गई, तो तुम्हारा रास्ता साफ हो गया। समझो कि नेशनल हाइवे पर गाड़ी आ गई, अब पूरी रफ्तार से चलाओ।

ध्यान की ऊँची अवस्था और पागलपन, दोनों के लक्षण समान होते हैं। हमने बहुत-से महात्माओं को देखा है, अनुभूति जाग्रत होने के बाद वे सामान्य स्तर पर

नहीं आ पाते। अगर तुम्हें गृहस्थ आश्रम में पत्नी के रूप में, पति के रूप में, पुत्र के रूप में, पुत्री के रूप में, अफसर के रूप में या कॉलेज के प्रोफेसर के रूप में काम करना है, तो फिर तुममें एक सामान्य व्यक्ति की तरह जीने की क्षमता होनी चाहिए।

जीवन यात्रा

हमारे गुरुजी ने जब कहा कि चालीस साल रुको, तो हमने कहा कि चालीस साल के बाद ही क्यों, अभी क्यों नहीं? उन्होंने कहा कि तुम गाड़ी छूटने के तीन घण्टे पहले स्टेशन आ गए हो। गाड़ी तो अभी आई नहीं है, तब तीन घण्टे क्या करोगे? हमने कहा कि हम उस बीच घर जाकर वापस आते हैं। उन्होंने कहा कि यदि उस बीच गाड़ी आ गई और छूट गई तो?

उन्होंने मुझसे कहा कि तब तक तुम यहीं रहो। घर जाकर तुम्हें जो करना है, वह सब तुम यहीं पर रहकर करो। फिर उन्होंने मुझे गोशाला खोलने के लिये कहा। ऋषिकेश में जो कोढ़ी सड़क पर बैठकर भीख माँगते थे, उन लोगों के लिए कॉलोनी बनाने के लिये कहा। मैंने सरकार और स्थानीय लोगों से दस-बारह एकड़ जमीन ली। उस समय गाँधी जी की सहयोगी, मीराबेन भी वहीं रहती थीं। उनका बहुत बड़ा फार्म था। उनसे कुछ खर-फूस वगैरह लिया, और कोढ़ियों के लिए घर बना दिये। उनको बकरी भी दी, बीड़ी भी दी, भत्ता भी दिया। शाम को वहाँ जाकर उन्हें रामचरितमानस भी पढ़ाता था। उनकी मलहम-पट्टी, दवा-दारू सब कुछ करता था।

वह काम खत्म हुआ तो उत्तर गुजरात भेज दिया गया। वहाँ आँखों के लिये शिविर लगाते थे। उन दिनों मोतियाबिंद के रोज डेढ-दो सौ ऑपरेशन होते थे। 1947 में मैं पाकिस्तान में था। लाहौर में पत्रिका छपती थी, मैं वहाँ स्थानीय संपादक था। 14 अगस्त को मैं वहीं था। और मैं वहीं फँस गया। मुझे मालूम था कि यह सब होने वाला है। मैंने आश्रम चिट्ठी लिखी, पर चिट्ठी का जवाब ही नहीं आया। खैर सेना ने मुझे निकाला 17 तारीख को। वहाँ से आया तो बंगलादेश भेज दिया गया। वहाँ राहत शिविर में चार-चार हजार लोगों को खाना खिलाते थे।

कहने का मतलब यह कि गृहस्थ आश्रम में जो काम करना पड़ता है, वही संन्यास आश्रम में किया। स्वामीजी ने कहा था कि बेटा, तुम रेलवे प्लेटफार्म पर तीन घण्टे पहले आ गए हो, अब प्रतीक्षालय में रुको, अखबार पढ़ो, मूँगफली खाओ, इधर-उधर चहलकदमी करो, सिगरेट-बीड़ी पिओ, समय निकल जाएगा। गाड़ी आएगी तो चले जाना। 1987 में मेरी गाड़ी के आने की सूचना आई, हरी झण्डी हो गई। 1988 में मैंने मुंगेर आश्रम छोड़ दिया, और 1989 में यहाँ आकर जम गया। अब गाड़ी आ गई है, मस्त हो कर बैठे हैं उसमें। साधना ऐसे करनी चाहिए। कभी भी गलत साधना मत करो। और बिना गुरु के तो कोई साधना करना ही नहीं।

रिखियापीठ, 17 अक्टूबर 1997

बच्चों का मार्गदर्शन

बच्चे भविष्य की संभावनाएँ हैं। उन्हें सक्रिय बनाना होगा। केवल राष्ट्र के संदर्भ में नहीं, बल्कि विश्व के संदर्भ में बच्चों को तैयार करना है। जो भी पैसा आप कमाते हैं, उसका भरपूर उपयोग बच्चों को अच्छी और आधुनिक शिक्षा देने में होना चाहिए। मतलब आय का मुख्य भाग शिक्षा में खर्च होना चाहिए। यह आवश्यक है कि बच्चे पढ़ाई में आगे बढ़ें। अगर पढ़ाई में किसी बच्चे का मन न लगे, तो पढ़ाई छुड़ाकर कोई दूसरा काम मत करवाओ।

बच्चों के सामने विकल्प

शिक्षा आजकल कई प्रकार की होती है। स्पोर्ट्स, मॉडलिंग आदि भी आजकल एक प्रकार की शिक्षा है। खिलाड़ियों की कमाई करोड़ों रुपये सालाना रहती है। प्रधानमंत्री को लोग जानें न जानें, पर मॉडल को सब जानते हैं। अच्छी कमाई भी होती है। मॉडलिंग से टेक्सटाईल मार्केट को बढ़ावा भी मिलता है। मेरे कहने का अर्थ यह है कि शिक्षा का प्रयोजन बच्चों को आज के और आने वाले समाज के अनुरूप बनाना होना चाहिए। जो आने वाला समाज है, वह हॉइटेक समाज है, और आजकल के बच्चों के सपने भी करीब-करीब हॉइटेक ही हैं।

लड़कों के साथ-साथ अब लड़कियों के सामने भी अनेक विकल्प हैं। पहले हर समाज में, चाहे पूर्व हो या पश्चिम, यही एक विकल्प था कि लड़की सयानी होगी तो शादी करेगी। न पढ़ाई का विकल्प था, न व्यवसाय का विकल्प था, और

न जीवन का अन्य कोई विकल्प था। किन्तु आज विकल्प खुले हैं। आज लड़की राष्ट्रपति, सेनानायक, वैज्ञानिक, अंतरिक्ष यात्री या क्रान्तिकारी भी बन सकती है। हाथ में बंदूक भी उठा सकती है। सब कुछ कर सकती है। इसलिए लड़की और लड़के का जो सामाजिक भेद है, उसे पैसे वाले लोग ही समाप्त करें तो अच्छा रहेगा। इस काम को गरीब नहीं कर सकता। एक कहावत है – 'बिल्ली के गले में घण्टी कौन बाँधे।' बिल्ली के गले में एक बिल्ली ही घण्टी बाँध सकती है, चूहा नहीं। आप में से जो विद्वान्, समर्थ लोग हैं, इसकी शुरुआत करें।

हिन्दुस्तान में माँ-बाप प्राय: समझते हैं कि अपना बच्चा है, इसलिए उसे अपनी कार्बन-कॉपी बनाना चाहते हैं। बच्चों को अपनी कार्बन-कॉपी बनाने का जमाना अब चला गया। उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी तक यह सम्भव था। अब इक्कीसवीं शताब्दी में यह सम्भव नहीं होना चाहिए। आज बच्चों के लिए बहुत बड़ा मैदान है। लड़कियों के लिए भी बहुत बड़ा मैदान है। यह देश न तो चीन के रास्ते जाएगा, न रूस के और न ही पश्चिम एशिया के। यह देश पाश्चात्य सभ्यता के रास्ते जाएगा, क्योंकि पाश्चात्य लोगों की नस्ल और हम लोगों के पूर्वजों की नस्ल में कहीं पर समानता है। हम लोगों का वही रुख है, हम लोग वैसा ही आदमी बनना चाहते हैं। लेकिन हम लोगों को एक तरह से बंद कमरे में रखा गया, लपेटकर रखा गया, पर्दे में रखा गया, क्योंकि हमारे राजा ऐसे ही थे, मुगल साम्राज्य में और उसके पहले दूसरे साम्राज्यों में भी। हम लोग कई हजार साल से गुलामी में रहे हैं। हम लोगों ने स्वतंत्र जीवन कभी बिताया नहीं।

भूतकाल से चिपके रहने का आज कोई विकल्प हमारे सामने नहीं है। हम भूतकाल को छोड़ना चाहते हैं। भूतकाल को छोड़ना और भविष्य में पैर रखना, यह निरंतरता कहलाती है। यदि हम भूतकाल को नहीं छोड़ेंगे तो रुकावट आ जाएगी, सनातनता नहीं रहेगी। सनातन धर्म में भूतकाल को छोड़ना पड़ेगा और भविष्य को जोड़ना पड़ेगा। और यदि भूतकाल में ही जाना चाहते हो, तो यह कोट-पतलून उतारो, लंगोटी पहनकर आओ। अपने बीबी-बच्चों को डिब्बा लेकर बाहर भेजो, कुएँ में स्नान करने को बोलो। बाहर ही में दो ईंट लगाकर एक छोटा-सा चूल्हा बनाओ और उसमें खाना पकाओ। उनसे सुबह-सुबह पत्ते इकट्ठे करवाओ। नहीं, हमें उस तरफ जाना ही नहीं है, हमें उस भारत को नष्ट करना है। हमें उस भारत की आवश्यकता नहीं है। बहुत हो चुका। और ये बच्चे भी नहीं चाहते उसे। भले ही तुम चाहो, साधु चाहे, ब्राह्मण चाहे, बड़े लोग चाहें, पर ये बच्चे बिल्कुल नहीं चाहते।

भारत का भविष्य ये बच्चे हैं, तुम या हम नहीं। हम भारत के भूत हैं, अतीत हैं। भारत के बच्चे शिक्षा के बारे में क्या चाहते हैं, अन्य विषयों के बारे में क्या चाहते हैं, यह हम लोगों को स्पष्ट होना चाहिए। बच्चों के ऊपर किसी तरह का नियंत्रण नहीं होना चाहिए। आखिर क्या सही है और क्या गलत? धर्म-अधर्म की परिभाषा कौन करेगा? लाल टीका लगा कर रहें तो धार्मिक हो गए! नहीं, मनुष्य को अपने

अन्दर छिपी हुई प्रतिभा को उजागर करना होगा, चाहे वह काव्य प्रतिभा हो, क्रीड़ा की प्रतिभा हो, विज्ञान की प्रतिभा हो या अपराध की प्रतिभा हो। आखिर ठग विद्या भी तो एक प्रतिभा है, नहीं है क्या?

बच्चों को 'पढ़ो-पढ़ो' नहीं कहना है। आखिर कितना पढ़ेंगे, थोड़ा खेलना भी चाहिए, क्योंकि खेल बच्चों के मन और स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है। तुम्हारा दवाइयों का बिल गिर जाएगा, उनका स्वास्थ्य अच्छा हो जाएगा, उन्हें जमकर नींद आएगी और तुम्हारे साथ तो कभी झगड़ा होगा ही नहीं। माँ और बेटियाँ दिनभर उलझेंगे नहीं।

यांत्रिक युग

कोई भी सभ्यता सम्पूर्ण नहीं है। किसी को हम अंतिम सभ्यता नहीं कहते हैं। परन्तु आज जो सन् 2004 में हम अपनी आँखों से देख रहे हैं, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य एक नए युग में प्रवेश कर रहा है। यह युग है यंत्र का और यंत्र की संभावना इतनी अधिक हो गई है कि कल तुम घर बैठे माल मँगाओ, घर बैठे पढ़ो, पुस्तकालय में जाने की जरूरत ही नहीं है। इसके अलावा विद्या के द्वारा आगे जाकर युद्ध का स्वरूप भी बदलने वाला है। हो सकता है कि सेना में किसी को भर्ती ही न करना पड़े। टैंक में रोबोट को बिठा दें और यंत्र के द्वारा उसको संदेश भेजें। मरता है तो मरने दो, रोबोट ही तो मर रहा है। ये सब चीजें आ रही हैं। युद्ध में सेना का जाना जरूरी नहीं है और यह भी कोई जरूरी नहीं है कि युद्ध देश को जीतने के लिए हो। भविष्य में युद्ध मार्केट को जीतने के लिए होगा। पहले जमाने में जमीन या औरत के लिए युद्ध होते थे। अब मार्केट के लिए युद्ध होंगे और आगे जाकर पानी के लिए भी लड़ाई हो सकती है।

बच्चों को एकदम तेज-तर्रार और हाजिरजवाब होना चाहिए, जो तुम्हें जवाब दे सकें। जो बच्चा माँ-बाप को जवाब नहीं दे सकता, वह बच्चा कैसा? माँ-बाप सदाचार के परम अवतार हैं क्या? क्या वे हमेशा सही होते हैं? बच्चा बोलता है, 'पापा, आप क्या कर रहे हैं? दिनभर तो आप सिगरेट पीते रहते हैं और हमें बोलते हैं मत पीयो। शाम को आप क्लब में जाते हैं, घर में क्यों नहीं आते? उस औरत से आप क्या बात करते हैं?' बच्चों में इतनी हिम्मत होनी चाहिए कि जो उनके मन में है, वह अपने माता-पिता को बोल सकें। बच्चों को अब कमजोर मत करना। बच्चों को कमजोर बनाना माने हिन्दुस्तान को कमजोर करना।

प्रसुप्त प्रतिभा

इस दुनिया में कोई बच्चा, कोई चीज बिना हुनर के पैदा नहीं होती है। पत्थर उठाओ तो उसमें से भी अभ्रक या सोना या ताम्बा निकलता है। हर चीज में कोई-न-कोई योग्यता छिपी है। उसको अँग्रेजी में 'टेलेन्ट' कहते हैं और गीता उसको कहती है

विभूति। पैसा कमाना जरूरी नहीं है, पैसा कमाने के लिए जिन्दगी पड़ी है। असली जिन्दगी वह है कि मनुष्य इस जीवन में कुछ कर सके। वह योग्यता तुम्हारे लड़के में भी है, तुम्हारी लड़की में भी है, सबमें है। कोई व्यक्ति दरिद्र पैदा नहीं हुआ। बिना योग्यता के किसी ने जन्म नहीं लिया। इस बात को हमेशा याद रखना। अब केवल ढूँढ़ना है कि उसकी योग्यता क्या है।

तुम अपने बच्चे को जबरदस्ती इंजीनियर या डॉक्टर या वकील या मिनिस्टर बनाना चाहोगे, तो उसकी योग्यता प्रकट कैसे होगी? रास्ता तो बच्चा खोजेगा, माता-पिता थोड़े ही खोजेंगे। हाँ, गुरु खोज सकता है। कालिदास किस स्कूल में पढ़ा था? उसकी कहानी तो सब जानते हैं। महात्मा गाँधी तो एक साधारण वकील थे न? साधारण-से-साधारण व्यक्ति के अंदर भी एक हुनर छिपा रहता है, जो कभी-कभी बिना इस्तेमाल किए व्यर्थ ही चला जाता है। क्यों चला जाता है? इसलिए कि हम लोग हाथी से हल चलवाना चाहते हैं और गधे से खेती करवाना चाहते हैं।

बच्चों को अवसर देना माता-पिता का काम है। अवसर का मतलब होता है सम्भावना। अगर आपका जूते या कपड़े का व्यापार है और आप चाहते हैं आपका बच्चा भी उसी दुकान पर बैठे, यह आपकी अपनी पसंद है, बच्चे के लिए सम्भावना नहीं है। सम्भावना वह है कि लड़का आगे जाकर कुछ अनुसंधान करे और समाज को कुछ दे। उसका इतिहास में नाम तो होगा ही, साथ-ही बैठे-बिठाए करोड़ों रुपयों की रॉयल्टी भी मिलेगी। आज के युग में नाम और यश काफी नहीं है, पैसा भी चाहिए।

जिन लोगों के पास पैसा है, वे अपने बच्चों को शिक्षा के मार्ग में लगाएँ। बच्चे जितना हिन्दुस्तान में पढ़ सकते हैं, हिन्दुस्तान में पढ़ें, उसके बाद सम्भावना हो तो बाहर जाकर पढ़ें, क्योंकि यह तो पक्की बात है कि शिक्षा की व्यवस्था बाहर के देशों में यहाँ से ज्यादा अच्छी है। चीन या रूस नहीं भेजना, वहीं भेजना जहाँ सम्भावनाएँ हैं। अगर बच्चों को चीन या रूस भेजोगे, तो वे लोग वहाँ से साम्यवाद लाएँगे। यद्यपि लोग अमेरिका से घृणा करते हैं, फिर भी सब अमेरिका ही भेजते हैं। क्यों? इसलिए कि वहाँ अवसर हैं। वहाँ मनुष्य को उन्नति के, पढ़ने के अवसर मिलते हैं। अपने बच्चों के प्रति आपका इतना ही दायित्व है। जब बच्चे बड़े हो जाएँगे, तो अपना भविष्य खुद देखेंगे।

आज शिक्षा जगत् के समक्ष सबसे महत्त्वपूर्ण और जटिल समस्या है 'शिक्षा किसको दी जाए'। बुद्धि को, अवचेतन मन को या अचेतन मन को? लोग समझते हैं कि शिक्षण बुद्धि का होता है, लेकिन यह धारणा गलत है। अभी मनुष्य मस्तिष्क का मात्र दसवाँ हिस्सा जाग्रत है, शेष नौ हिस्से सोये हुए हैं। मस्तिष्क के उन्हीं प्रसुप्त केन्द्रों को जाग्रत करना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

हृदय की शुद्धि

आध्यात्मिक जीवन में यह सवाल अक्सर उठता है कि हृदय की शुद्धि, दिल की सफाई कहते किसको हैं? यह कैसे पता चलेगा कि हमारा दिल साफ है या नहीं? रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे, 'जहाँ गंदगी होती है, वहाँ मक्खी अपने आप आती है। जहाँ मीठा होता है, वहाँ चींटी अपने आप आती है। जहाँ सम्पत्ति होती है, वहाँ चोर अपने आप आता है। और जहाँ सुन्दर बगीचा, सुन्दर तालाब, सुन्दर फूल, बड़ा अच्छा सुरम्य ललित वातावरण होता है, वहाँ सब लोग अपने आप आते हैं।' बस, हृदय भी ऐसा होना चाहिए।

दिल और दिमाग दो अलग चीजें हैं। दिल कहते हैं भावना को और दिमाग कहते हैं विचार को। विचार दिमाग से पैदा होता है और भावना हृदय से। लेकिन भावना दिमाग को भी प्रभावित करती है। अगर तुम्हारे अन्दर भय, निन्दा, हिंसा, काम, क्रोध या ईर्ष्या जैसे बुरे विचार आते हैं, तो समझ लो कि जरूर तुम्हारी भावना में गड़बड़ है। अगर तुम्हारा हृदय शुद्ध है, तो तुम्हारे विचार भी वैसे ही शुद्ध और मलिनता से मुक्त होंगे। यही जीवन में पवित्रता की कसौटी है। तुम कोई अच्छी किताब पढ़कर एक-आध नेक विचार सोच लेते हो, पर वह कोई मायने नहीं रखता। किताब पढ़कर तुम यह नहीं कह सकते कि तुम एक भले और नेक इंसान बन गए हो। जो भी किताब पढ़ोगे उससे प्रभावित तो होगे ही। बुद्ध, क्राइस्ट, विवेकानन्द और सत्यानन्द तो सही बात कहते ही हैं, उनके विचार नेक हैं ही। लेकिन क्या तुम भी वैसा अनुभव कर सकते हो?

दिमाग नहीं, हृदय और भावना ही भक्ति का आधार होते हैं। बिना भावना के भक्ति हो ही नहीं सकती। बिना भावना के काम-वासना, क्रोध, भय, ईर्ष्या, सुख-दुःख या चिन्ता हो ही नहीं सकती। इसका मतलब यह हुआ कि अशुभ रास्ते से जाने वाली भावना को ही शुभ मार्ग की ओर ले जाना है। यह जो वासना की नदी बह रही है, इसको शुभ मार्ग की ओर ले जाओ और शुभ मार्ग पर नियोजित करके क्षीण करो। इसी वासना की नदी को हम भावना बोलते हैं। यह हर मनुष्य के अन्दर बह रही है। इसको किसी ने देखा तो नहीं है,

पर अनुभव जरूर हुआ है। अब इस नदी को हम लोग नियोजित करते हैं, इसका मार्ग बदलते हैं। इसका मार्ग बदल कर नहर बना देते हैं, खेतों की तरफ ले जाते हैं और बिजली पैदा करने के लिए इसका इस्तेमाल करते हैं। जो नदी कभी अपने तट को तोड़कर गाँवों, बस्तियों और खेतों को बर्बाद कर रही थी, वही नदी आज निर्माणकारी हो गई है।

उसी प्रकार भावना की जो नदी है, जिससे तुममें क्रोध, काम-वासना या ईर्ष्या पैदा होती है, जिसके कारण तुम किसी को गोली मार देते हो, किसी को मुकदमे में फँसा देते हो, अपनी बीबी-बच्चों की पिटाई करते हो, दूसरी औरत के पास जाते हो या दूसरे का धन हड़प लेते हो, वह भावना अलग-अलग नहीं होती। अगर तुम्हारी जेब में बीस रुपये हैं, तो ऐसा नहीं हो सकता कि दस रुपये इस जेब में रहें और दस दूसरी जेब में। भावना में आधे-आधे की बात लागू नहीं होती। अगर मनुष्य को अपने जीवन की दिशा बदलनी है, तो भावना का शत-प्रतिशत मार्ग परिवर्तन जरूरी है। आखिर विवेकानन्दजी क्या थे? ज्यादा-से-ज्यादा कॉलेज से पढ़-लिखकर वकील वगैरह बने होते। पर आज तो वे युग-पुरुष हो गए न, लाखों-करोड़ों व्यक्तियों के लिए एक प्रेरणास्रोत बन गए हैं।

बुरे विचार तो सबमें होते हैं। समझदार व्यक्ति उन्हें सहेज कर नहीं रखते, कचरे की टोकरी में डाल देते हैं। ज्ञानी के मन में भी बुरे विचार आते हैं, लेकिन वह उनको सेप्टिक टैंक में भेज देता है। जबकि अज्ञानी तो रसोईघर में ही टट्टी करके आ जाता है और वह वहीं पर पड़ी रहती है। उसे सफाई का कोई अंदाज ही नहीं है। सोने की जगह में बैठकर खाना खाओगे तो चूहा नहीं आएगा क्या? लोगों को मर्यादा का ज्ञान नहीं है।

सत्त्व गुण, रजो गुण और तमो गुण – सारी प्रकृति इन तीन गुणों से नियंत्रित है। जो त्रिगुणातीत हो गया, वह जीवनमुक्त हो गया। वह बहुत ऊँची अवस्था है।

सन्तो, अब चौथा पद पाया॥
नाभि-कमल से सुरता चाली, सुलटा दम उलटाया।
त्रिकुटि महल की खबर पड़ी जब, आसन अधर जमाया॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ती जानी, तुरिया तार मिलाया।
अन्तर अनुभव ताली लागी, शून्य मण्डल में समाया॥
चाली सुरता चढ़ी गगन पर, अनहद नाद बजाया।

जब मनुष्य के अन्दर तीनों गुण विद्यमान हैं, तब वह इन तीन गुणों को किस तरह से समन्वित करता है? उदाहरण के तौर पर तुम्हारे घर में भी तो ये तीनों गुण हैं। घर में सुन्दर कमरा, सुन्दर कपड़े, सब चीजें सुन्दर हैं। साथ-ही-साथ भोग की चीजें भी हैं और गन्दी चीजें भी हैं। इस तरह तुम्हारे घर में तीनों चीजें हुईं, शुद्ध वस्तु, भोग की वस्तु और गन्दी वस्तु। कैसे सम्हालते हो? आखिर अपने घर में भी सामान खोलते हो तो प्लास्टिक निकलता है, भोजन बनाते हो तो जूठन बचती है, सब्जी काटते हो तो छिलके निकलते हैं, जूते अन्दर लाते हो तो गन्दगी होती है। कैसे व्यवस्था करते हो? कपड़ा, चादर, कमरा, टॉयलेट, मकड़ी के जाले, सब साफ करने पड़ते हैं। ठीक उसी तरह से अपने हृदय की व्यवस्था करनी पड़ती है।

जब तुम्हारा हृदय शुद्ध हो जाएगा, तब भगवान वहाँ आकर बैठेंगे और उसके बाद तुम देखोगे कि जीवन की पूरी की पूरी नियति भगवान के हाथ में चली गयी है। हमारे यहाँ बचपन में कहा करते थे–दीन बंधु दीनानाथ, मेरी डोरी तेरे हाथ। वही अवस्था आनी चाहिए।

जब अपनी डोरी पूरी उनके हाथ में दे दी, तब वे चाहे तुमको कसाई घर ले जाएँ या मंदिर में तुमको देवता बना दें, तुमको क्या? भगवान को अगर अपना पूरा-का-पूरा जीवन दे दोगे, तो दुनिया में कुछ भी नामुमकिन नहीं। बस, भगवान के सामने शर्त नहीं रखना। वह तो ज्ञानी है, तुम्हारे दिमाग, हाथ-पैर और प्राणों को संचालित करता है। जब वही तुम्हारे जन्म-मृत्यु का फैसला करता है, तब उसको तुम क्या सिखाने चले हो? भगवान को बोलने की क्या जरूरत कि मेरा दु:ख दूर करो। उसी भगवान ने तो सारा सुख-दु:ख, धन-गरीबी, रोग-शोक दिया है। वह तो सब जानता है। भगवान सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक हैं। जब तुम मानते हो कि परमात्मा में ये तीन गुण हैं, तब उनको सुझाव देने की हिमाकत कैसे करते हो? बल्कि वे तुमको सुझाव देंगे कि बेटा, एक अच्छे संन्यासी बनो या एक अच्छे पति बनो।

रिखियापीठ, 25 दिसम्बर 2004

विषाद की समस्या

आजकल विषाद एक बहुत बड़ी बीमारी है। जब आदमी कुछ काम नहीं करता है, उसको कुछ करने के लिए नहीं होता है, दिनभर बैठे और लेटे रहता है और उसका दिमाग बहुत जगह घूमता है, तब उसको विषाद होता है। और उस विषाद की अवस्था में वह अस्थिर हो जाता है। किसी नौकरी में होगा, उसे छोड़कर दूसरी में जाने की कोशिश करेगा। कोई व्यापार कर रहा होगा तो सोचेगा, इसे छोड़कर दूसरे में जाएँगे तो नफा होगा। उसका मन अस्थिर हो जाता है। उसी तरह से वह अपनी बीबी के बारे में सोचता होगा। जब मनुष्य का मन अस्थिर होता है, जब उसको अपना वर्तमान अच्छा नहीं लगता, तब वह किसी काल्पनिक भविष्य में जाता है।

तुम अगर एक ही जगह पर गहरा गड्ढा खोदोगे, तो कभी-न-कभी पानी जरूर मिलेगा। लेकिन दस जगह पर थोड़ा-थोड़ा गड्ढा करोगे, तो हो सकता है कि कहीं भी पानी न मिले। उसी तरह से जब एक जगह पर मन स्थिर नहीं रहता, कई जगहों पर भटकता रहता है, तब कुछ भी हाथ नहीं आता। आज यह विषाद की बीमारी बहुत लोगों को है। आज ऐसे बहुत कम जवान आदमी हैं जो अपनी जगह पर हैं, बाकी सब बेजगह हैं। उनके सपने बहुत बड़े हैं, क्योंकि वे पढ़ते बहुत हैं। मन की तो कोई सीमा नहीं होती है। विचारों, अभिलाषाओं और सपनों की कोई सीमा नहीं होती। जिनका अपने मन पर कोई नियंत्रण नहीं होता, अपने सपनों और अभिलाषाओं पर कोई नियंत्रण नहीं होता, ऐसे आम लोगों को योग सिखाना होगा।

गीता कहती है कि अर्जुन को विषाद हो गया था। गीता के पहले अध्याय का नाम ही है – 'अर्जुन विषाद योग', यानि कि अर्जुन के विषाद का योग। भगवान को उसका इलाज करते-करते सत्रह अध्याय लगे। बार-बार भगवान उसको समझाते और बार-बार वह पूछता था। आखिर में अट्ठारहवें अध्याय में उसने कहा, 'भगवान अब समझ में आ गया।'

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

भगवान को इतनी कुश्ती करनी पड़ी एक विषाद को दूर करने के लिए। अर्जुन को व्यापार की वजह से विषाद नहीं हुआ होगा, परन्तु विषाद तो व्यापार, पढ़ाई या शादी, किसी भी वजह से हो सकता है। अर्जुन को विषाद क्यों हुआ था? जिन्दगीभर वह कौरवों से लड़ने की तैयारी कर रहा था। जिन्दगीभर उसने वही किया। एकदम अव्वल दर्जे का तीरंदाज बना और कैलाश जाकर भगवान शिव से उसने अस्त्र भी माँग लिए थे। पर जब लड़ाई का समय आया, वह रोकर बोला, 'नहीं, मेरा दिल

धुक्, धुक् कर रहा है। वे सब तो मेरे भाई, मामा, चाचा, ताऊ, साला, भतीजा, भांजा हैं। नहीं भगवान! मुझसे लड़ा नहीं जाएगा।' भगवान बोले, 'इतने साल तक तुम क्या कर रहे थे? तुमको यह अक्ल पहले क्यों नहीं आई? अब सारी तैयारी हो चुकी है, यहाँ मैदान में लड़ाई के लिए सेना इकट्ठी हो चुकी है, सबके शंख बज रहे हैं, युद्ध शुरू होने वाला है और तुम बोलते हो लड़ूँगा नहीं। क्या हो गया तुमको?' अर्जुन ने कहा, 'भगवन्, मुझे सब चीजें नकारात्मक दिख रही हैं।'

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे॥

ये विषाद के ही लक्षण हैं। विषाद बहुत सामान्य बीमारी है। किसी को तो बहुत देर के लिए होती है, किसी को दिन में एक-आध बार, तो किसी को शाम को सोने के समय होती है। दिन को हो गया तो सिगरेट पी लेते हैं, शाम को हुआ तो बोतल। और बहुत बड़ा अवसाद हुआ, तो फिर गांजा और कोकेन भी आ जाता है। अमेरिका के लोग कोकेन क्यों लेते हैं? विषाद के कारण। विषाद वह अवस्था है जब मनुष्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है, क्या करूँ भगवान? कई लड़कियाँ हैं जो पढ़ती हैं, पर इम्तिहान नहीं देतीं, कहती हैं इस साल 'ड्रॉप कर जाएँगे।'

पेट, घुटने, कमर वगैरह का दर्द, ये तो छोटी बीमारियाँ हैं। इंसान की बढ़ती हुई बीमारी है विषाद। हिन्दुस्तान में अट्ठाइस-तीस साल के जवान लड़कों को विषाद होने लग गया है। अब क्यों होने लग गया है, इस पर तुम पढ़े-लिखे लोगों को सोचना होगा। यह समझना होगा कि इसमें आहार, ब्रह्मचर्य, संयम आदि का क्या स्थान है। यह सब जरूर सोचना चाहिए। मैं यह सब इसलिए समझा रहा हूँ कि देवघर, जामतारा या धनबाद जैसे छोटे शहरों से आजकल लोग बड़े शहरों में जा रहे हैं और वहाँ उनको इस समस्या का सामना करना पड़ रहा है।

हर कोई अवसाद से गुजरता है। साधु-महात्मा भी समाधि की एक अवस्था में ऐसी स्थिति को पार करते हैं, जिस स्थिति को एक विषादग्रस्त व्यक्ति पार करता है। सुन लो ध्यान से। समाधि की एक अवस्था होती है जिसमें मस्तिष्क की वही स्थिति होती है जो एक विषाद वाले व्यक्ति की होती है। शरीर में कोई रासायनिक या हॉर्मोन की गतिविधि नहीं होती है। पाचन तंत्र, रक्त संचरण प्रणाली, स्नायु तंत्र, सब चुप। वह स्थिति समाधि की है। उस स्थिति से जब साधक गुज़रता है, तब उसको सारा संसार फरेब और झूठा लगता है। माँ, बाप, बेटा, भाई, पति, पत्नी, सब झूठे हैं; सब तो मरने वाले हैं; ये कहाँ से आए हैं – ऐसे विचार आने लगते हैं। समाधि के बाद ऐसा बोध होता है। हमें हुआ है। ऐसा ख्याल आता है कि मरने दो न दुनिया को, क्यों परवाह करें। पर हमें गुरु मिल गए। गुरुजी ने कहा, 'तुम ठीक सोच रहे हो। परन्तु रोज़ मेरा हुक्का भर दिया करना वक्त पर। मेरी बीबी के कपड़े साफ कर देना।' वैसे मेरे गुरुजी की बीबी नहीं थी, वे तो साधु-महात्मा थे। मैं तो सिर्फ मजाक के लहजे से बोल रहा हूँ!

गुरुजी आगे बोलते हैं, 'मेरे बच्चे को रोज नहला देना। और ये बर्तन ढंग से साफ करना। तुम जो सोच रहे हो, ठीक सोच रहे हो। दुनिया मिथ्या है, सब बेकार है। मगर मेरा हुक्का मिथ्या नहीं है। मेरी बीबी के कपड़े मिथ्या नहीं हैं। और मेरा बबुआ मिथ्या नहीं है। ये जो भांडे-बर्तन रखे हैं, ये भी मिथ्या नहीं हैं, इनको समय पर साफ करना। और उस गैया के लिए घास भी लेते आना।' अब चेला बोलता है, 'हाँ, गुरुजी! आप ठीक कहते हैं।' और फिर बेचारा सवेरे चार बजे से शाम को आठ बजे तक गाय को नहलाता है, पानी पिलाता है, चराता है, बर्तन साफ करता है, गुरु-माता के कपड़े साफ करता है, गुरु-पुत्र का काम करता है। और बीच में गुरुजी कहते हैं, 'ए! हुक्का नहीं भरा? तू जा घर अपने। बेकार का चेला है, कुछ काम नहीं करता है।' चेला कहता है, 'नहीं गुरुजी, माफ कर दीजिए।'

बारह साल तक चेला यही करता रहा, विषाद के परिणाम से बच गया। कैसे बचा? निष्काम कर्म करने के कारण। वह अपने लिए थोड़े ही करता था। गुरुजी ने कहा, इसलिए कर दिया। अगर गुरुजी कहते कि नहीं, उतना काम मत करो, तो नहीं करता। निष्काम कर्म का मतलब होता है, दूसरे की इच्छा से कर्म करना, अपनी इच्छा से नहीं। यह गीता के निष्काम कर्म का मतलब बतला रहा हूँ।

अब अपने बारे में बोलता हूँ। हमारे घर में एक हजार एकड़ जमीन थी। दो हजार एकड़ जंगल था। जंगल से भी पैसा मिलता था। हमारे दादा ने जागीर भी ली थी, बहुत मेहनत करते थे, बहुत पैसा निकलवाते थे। पर हम को ऐसा लगा कि सब बेकार है, सब छोड़-छाड़ कर ऋषिकेश आ गए। गुरुजी ने कहा, 'ठीक है, हमारी खातिर करो।' हमारे गुरुजी की बीबी नहीं थी, हुक्का वगैरह भी नहीं पीते थे। वे बेचारे तो चाय-कॉफी तक नहीं पीते थे, मिर्ची भी नहीं खाते थे। सिद्ध महात्मा थे, एम.बी.बी.एस. डॉक्टर भी थे। अँग्रेज़ी में खूब लिखते थे, जिसका हम अनुवाद और टाइपिंग करते थे।

गुरुजी कहते, 'जाओ, लाहौर में जाकर छाप कर लाओ', तो जाकर छाप देते थे। 'बेचो', तो बेच देते थे। 'देहरादून जाकर बैंक में पैसा जमा करो', तो जमा कर देते थे। 'नगर निगम में जाकर सीमेन्ट और चीनी के लिए परमिट लाओ', तो हम वह भी कर देते थे। हमारा यही काम था। दुनिया में भाई, बाप, बेटा क्या है, हम सब भूल गए। गुरुजी का चेक देहरादून में जमा करना है, छब्बीस मील दूर है, कैसे जाएँगे, कितने बजे गाड़ी आएगी? उसी में दिमाग रहता था, बारह साल तक यही किया।

एक दिन हमने गुरुजी से कहा, 'महाराज जी, अगर हमें काम ही करना है, तो घर में जाकर क्यों न करें?' तब गुरुजी ने कहा, 'देखो, घर में तुम अपने लिए करते हो। वहाँ और यहाँ में बहुत फर्क है। वहाँ का पुरस्कार तुम्हें मिलता है, यहाँ का पुरस्कार मुझे मिलता है, तुम को नहीं।' कर्म का पुरस्कार क्या है? आसक्ति और प्राप्ति। यह समझकर मैं फिर वहाँ टिक गया।

रिखियापीठ, 4 जून 2006

रिखिया का रूपान्तरण

मैं 23 सितम्बर, सन् 1989 में दिन के बारह बजे रिखिया आया। यह पूर्ण साम्यता और संतुलन का दिन था, जब दिन और रात बिल्कुल बराबर होते हैं। ऐसे दिन पर, ठीक मध्याह्न के समय मैंने यहाँ कदम रखा। क्या यह शुभ मुहूर्त एक संयोग मात्र था? स्वामी सत्संगी यह जमीन खरीदने यहाँ कुछ हफ्ते पहले आ गई थी। जमीन की चाहरदिवारी और अन्य इमारतें खड़ी करने के लिए उसने अमरवा गाँव के एक बूढ़े आदमी, नारायण को काम पर लगाया। नारायण स्वामी सत्संगी से बहुत प्रभावित था। वह एकदम अँगूठाछाप था, लेकिन बहुत ही नेक और ईमानदार आदमी था। अब वह नहीं रहा, लेकिन मुझे उसकी याद आती है।

रूपान्तरण का बीज

एक दिन उसने स्वामी सत्संगी को अपनी छोटी-सी झोंपड़ी में आमंत्रित किया। जब स्वामी सत्संगी वहाँ से लौटी तो एकदम भौंचक्की थी। वह पश्चिमी पाँच-सितारा संस्कृति की संतान है, उसका कभी हिन्दुस्तान के देहातों से पाला नहीं पड़ा। फियेट या फोर्ड मोटरगाड़ियों की उसे पूरी जानकारी थी, लेकिन ग्रामीण जीवन का बिल्कुल भी अंदाज नहीं था। और जब उसके घर से आई तो लगा जैसे सदमे में है।

मैंने पूछा, 'क्या हुआ?' उसने कहा, 'ये लोग ऐसे कैसे रह सकते हैं?' मैंने जवाब दिया, 'करोड़ों हिन्दुस्तानी ऐसे ही रहते हैं।' उसने कहा, 'पर उस घर में खिड़की तक नहीं है। बस एक छोटा-सा कमरा है, और नारायण वहाँ अपनी बीवी, बेटा-बेटी, बहू, पोते-पोतियों, बकरियों और मुर्गियों, सब के साथ रहता है।' मैंने कहा, 'हिन्दुस्तान के गाँवों में सभी ऐसे ही तो रहते हैं। लाखों-करोड़ों की संख्या में लोग ऐसा जीवन जीते हैं। मैं जानता हूँ क्योंकि बचपन में मैं भी अल्मोड़ा जिले के गाँवों में ऐसे ही रहा करता था। वह छोटा-सा कमरा एक पूरे परिवार के लिए जहान के बराबर होता है।'

'नहीं, यह बात मुझे हजम नहीं होती,' वह बोली, 'मैं उसके लिए एक ढंग का घर बनवाऊँगी।' मैंने कहा, 'क्या फालतू बात करती हो! तुम ऐसे कितने घर बनवा सकती हो? तुम्हारे पास करोड़ों रुपये हों, तो भी कम पड़ जाएँगे।'

खैर, कुछ घर बनवाने के बाद उसे मेरी बात समझ में आई कि यह कितना मुश्किल काम है। तब उसने रिखिया के आसपास के गाँववालों को ठेला, रिक्शा और ऑटो-रिक्शा देना शुरू किया। यह एक अच्छी योजनी थी, इससे वे लोग अपने और अपने परिवार का पेट पालने लायक कुछ पैसे कमा लेते थे। फिर उसने गाँव की महिलाओं, बच्चों, बूढों और बीमारों को कपड़े और कम्बल देने शुरू किये। मैंने इसे स्वीकार नहीं किया। मैं कहता था, 'अगर तुम इन लोगों को गरीब ही रखना चाहती हो, तो जरूर खैरात करो। इन्हें मुफ्त का खाना दो, मुफ्त के घर दो। तुम्हारा नाम भले ही रौशन हो जाए, लेकिन ये गरीब-के-गरीब ही रहेंगे। पता लगाओ कि गरीबी दूर करने का कारगर उपाय क्या है। आखिर तुम सूरज तो हो नहीं, बस एक छोटा-सा दीया ही जला सकती हो।'

अंत में उसने मेरे आगे घुटने टेक दिये। मैंने कहा, 'सुनो, मैं तुम्हें बताता हूँ कि क्या करना चाहिए। मकान बनाना, कपड़े बाँटना, ठेला-रिक्शा देना, यह सब तमाशा किसी को फायदा पहुँचाने वाला नहीं। सब गहरे गर्त में जा गिरेंगे।' आप सब मुझसे सहमत होंगे कि दान दरिद्रता की जननी है।

सकारात्मक परिवर्तन

तब एक दिन पास के नवाडीह गाँव से एक छोटी-सी लड़की आई और बोली, 'स्वामीजी, मैं अँग्रेजी सीखना चाहती हूँ।' मैंने स्वामी सत्संगी से कहा, 'देखो, यह तुम्हारा राजमार्ग है – अँग्रेजी।'

स्वामी सत्संगी ने उस एक लड़की से शुरुआत की और अब आप लोग खुद देख सकते हो कि उनकी संख्या कितनी हो गई है। अँग्रेजी सीखने की जबरदस्त माँग है। आए दिन गाँववाले स्वामी सत्संगी के पास आकर अनुरोध करते हैं कि उनकी बच्चियों को भी अँग्रेजी क्लास में भर्ती कर लिया जाए। जब उसने लड़कियों से पूछा कि वे क्या सीखना चाहती हैं तो उन्होंने हिन्दी या संस्कृत नहीं, अँग्रेजी कहा।

समृद्धि की वृद्धि

तब से यहाँ एक ठोस परिवर्तन आया है। इस पंचायत में अब ऐसा कोई परिवार नहीं जिसे भूखे सोना पड़ता है। इस पंचायत में ऐसा कोई बच्चा नहीं जिसे एकाध महीने में नये कपड़े नहीं मिलते। हर पर्व और त्यौहार पर, चाहे वह होली हो, या दिवाली, दशहरा, नवरात्रि या गुरु पूर्णिमा, हम उन्हें सुन्दर कपड़े प्रसाद में देते हैं। हमारे पास हमेशा वस्त्रों का भण्डार लगा रहता है।

जिस पंचायत के बच्चों को साल में पाँच-सात नईं, सुन्दर पोशाकें मिलती हों, उन बच्चों को तुम क्या होगे? फटीचर? गरीब? निम्न वर्ग? मध्यम वर्ग? उच्च वर्ग? इन्हें हम किस श्रेणी में रखें? ये बच्चे खुश हैं और इनकी समृद्धि धीरे-धीरे इनके समाज में फैल रही है। समृद्धि हमेशा धीरे-धीरे बढ़नी चाहिए, इससे व्यक्ति अंकुश में रहता है। अगर धन-समृद्धि सुनामी की तरह आ जाए, तो वह तुम्हें बहा ले जाएगी। तुम अपने ऊपर नियंत्रण नहीं रख पाओगे।

अब इन बच्चों की आसपास के स्कूलों में पूरी हाजिरी रहती है। पढ़ने-लिखने में इतनी रुचि हो गई है इनकी! जब हम यहाँ आए थे, सभी स्कूल सूने-से दिखलाई देते थे। शायद ही कोई विद्यार्थी नजर आता था। अब वहाँ बच्चों की भरमार है, और स्थानीय प्रशासन ने भी उनके लिए अच्छे क्लासरूम बना दिये हैं। पढ़ाई-लिखाई की ओर बच्चों का इतना रुझान हो गया है कि हमारी पंचायत में एक प्राइवेट स्कूल भी खुल गया है, जहाँ माँ-बाप तीस रुपये महीने देकर अपने बच्चों को भेजते हैं। इसे पता चलता है कि वे अपने बच्चों की शिक्षा पर कितना ध्यान दे रहे हैं। सरकार को उन्हें यह समझाने की जरूरत नहीं, वे खुद शिक्षा के महत्त्व को समझ गए हैं।

पिछले साल हमने कन्याओं के लिए कम्प्यूटर प्रशिक्षण शुरू किया। हमने उन कन्याओं को चुना जो अँग्रेजी क्लास में अच्छा कर रही हैं। उन्होंने कम्प्यूटर चलाना इतनी जल्दी सीख लिया कि अब वे छोटे बच्चों को सिखाने के लिए तैयार हैं। और मेरे शुभचिन्तकों ने मुझे आश्वासन दिया है कि जितने चाहूँ उतने कम्प्यूटर देने को वे तैयार हैं। मुझे क्या चाहिए? अगर मुझे डेढ-दो सौ कम्प्यूटर मिल जाएँ, तो इस पंचायत के सैकड़ों बच्चे कम्प्यूटर चलाना सीख लेंगे। जहाँ तक सिखाने वालों का सवाल है, वहाँ कोई समस्या नहीं, क्योंकि आश्रम का हर गेरूधारी संन्यासी कम्प्यूटर चलाना जानता है। आध्यात्मिक जीवन का ही यह प्रभाव है उनपर। यह इस बात का लक्षण है कि उनकी कुण्डलिनी जाग रही है!

रिखियापीठ, 1 दिसम्बर 2005

कर्म संन्यास और पूर्ण संन्यास

कर्म संन्यासी वह व्यक्ति है, जो अपने सामान्य जीवन में पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री, बहन, भाई, मित्र, कर्मचारी, अधिकारी या व्यवसायी की भूमिका निभाते हुए भी आध्यात्मिक जीवन की ओर धीरे-धीरे उन्मुख होता जाता है। जबकि पूर्ण संन्यासी समाज और सभी सामाजिक सम्बन्धों को तिलांजलि देकर, अकेले रहते हुए अपने जीवन को आध्यात्मिक चेतना के विकास के लिए समर्पित कर देता है। संन्यासी जो कुछ भी करे, वह इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए होना चाहिए। कर्म संन्यासी और पूर्ण संन्यासी में यही मौलिक अंतर है।

यह अवधारणा और प्रथा ईसाइयों में भी पाई जाती है। ईसाई परम्परा में पादरी और नन पूर्ण संन्यास के प्रतीक हैं, और एक साधारण आदमी, जिसे बपतिस्मा संस्कार से ईसाई धर्म में दीक्षित किया जाता है, कर्म संन्यास का। तुम ईसाई के रूप में पैदा नहीं होते, केवल एक मनुष्य के रूप में जन्म लेते हो। लेकिन जब तुम्हें लगता है कि तुम एक आध्यात्मिक, एक धार्मिक जीवन बिताना चाहते हो, तब तुम बपतिस्मा पाने के लिए आते हो। और बपतिस्मा के बाद तुम एक ईसाई कहलाते हो। तब तुम अपनी माला जपते हो, बाइबल पढ़ते हो, चर्च जाते हो।

किसी पादरी या नन को कुछ व्रत, कुछ संकल्प लेने पढ़ते हैं। यह पूर्ण संन्यास जैसा ही है। लेकिन यह याद रखो कि पूर्ण संन्यासी अपनी चेतना के उत्थान के लिए ही जीता है। वह समाज-सुधारक नहीं होता, भले ही उसके माध्यम से समाज में अनेक सुधार स्वत: हो जाएँ। वह धर्मयोद्धा नहीं होता, धर्म के लिए लड़ाइयाँ नहीं लड़ता। हाँ, एक आध्यात्मिक परम्परा को जीवित रखने के लिए संघर्ष अवश्य करता है। कई बार राजनैतिक उथल-पुथल की वजह से धार्मिक परम्पराओं का पतन शुरू हो जाता है, और ऐसे समय पादरी, भिक्षु और संन्यासी अपने धर्मपथ से च्युत होने लगते हैं। अपनी आध्यात्मिक यात्रा और साधना पर ध्यान देने की बजाय वे धर्मयोद्धा बन जाते हैं।

इसलिए पादरी या संन्यासी भी दो श्रेणियों के अंतर्गत आते हैं। पहली श्रेणी में वे हैं जो संत फ्रांसिस या ज़ेवियर जैसी विभूतियों के बताये रास्ते पर चलते हैं। वे एकान्त में रहते हैं। जप, तप और ध्यान में लीन रहते हैं। ऐसे साधकों का जीवन बहुत सहज और सरल होता है। ऐसे साधक वास्तव में पूर्ण संन्यासी हैं।

दूसरी श्रेणी में ऐसे संन्यासी आते हैं जो धर्म का प्रचार या समाज-सुधार करते हुए जगह-जगह घूमते हैं। समाज के साथ निरंतर सम्पर्क के कारण वे कई बार पथभ्रष्ट हो जाते हैं। आत्मज्ञान की बजाय उनका उनका लक्ष्य धर्म का प्रचार हो जाता है। ऐसी मानसिकता ईसाई मत तक ही सीमित नहीं। वैदिक धर्म के अनुयायियों में भी

यह देखा जाता है। एकान्त, सरलता, सहजता, ब्रह्मचर्य, तपस्या और ध्यान से युक्त आध्यात्मिक जीवन जीने की बजाय संन्यासी समाज-सुधारक, धर्मगुरु और आचार्य बन जाते हैं। यहाँ भी पतन होने लगता है।

संसार में रहते हुए भी संन्यास का अनुशासन कायम रखना पड़ता है। यही एक पूर्ण संन्यासी का लक्षण है, धर्म है। मैंने इसका पालन किया है। जब मैं दुनियाभर में घूमते हुए योग सिखा रहा था, तब भी मैं पूर्ण संन्यासी ही था। अब मैं योग नहीं सिखाता, सभी संस्थागत क्रियाकलापों से निवृत्त हो चुका हूँ। अब भी मैं पूर्ण संन्यासी हूँ। दोनों परिस्थितियों में मैं पूर्ण संन्यास के मार्ग पर ही रहा। अंतर केवल इतना है कि तब मैं सक्रिय संन्यासी था, अब निष्क्रिय हूँ।

जब तुम गृहस्थ के रूप में किसी गुरु से कर्म संन्यास की दीक्षा लेते हो, तुम्हारे सामाजिक दायित्व, तुम्हारी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ बरकरार रहती हैं। तुम्हारे सम्बन्ध, महत्त्वाकांक्षाएँ, कल्पनाएँ, इच्छाएँ, वासनाएँ, सुख और दुःख, सभी रहते हैं। तुम कर्मों के जाल में फँसे हो और इसका तुम पर प्रभाव पड़ता है। यह अवश्यम्भावी है, कर्म के प्रभाव से कोई बच नहीं सकता। कर्म के प्रभावों के साथ तुम कैसे जूझते हो, उन्हें कैसे सम्भालते हो, इसी से पता चलता है कि तुम कर्म संन्यासी हो या नहीं।

कर्म संन्यासी के लिए समझने योग्य सबसे महत्त्वपूर्ण बात यही है। कर्म संन्यासियों को कर्मों का त्याग नहीं करना है। उन्हें जीवन की मजबूरियों की उपेक्षा करने की जरूरत नहीं। ऐसा हरगिज नहीं करना चाहिए। एक गृहस्थ के लिए जीवन की कौन-सी मजबूरियाँ हैं? लोभ, वासना, क्रोध, ईर्ष्या, राग और द्वेष। तुम न तो इनसे भाग सकते हो, न ही भागना चाहिए। अगर इनसे भागने की कोशिश करोगे, तो ये शारीरिक रोग, मानसिक बीमारी या व्यक्तित्व में किसी असंतुलन या दोष के रूप में व्यक्त होंगी।

कर्म संन्यासी को जीवन की इन मजबूरियों से पलायन नहीं करना चाहिए। आखिर इन्हें प्रकृति ने ही तो बनाया है। लेकिन साथ ही यह भी समझना चाहिए कि व्यक्तित्व पर इनका असर पड़ता है। लोभ का असर पड़ता है, वासना का असर पड़ता है, ईर्ष्या का असर पड़ता है। कर्म संन्यास उस असर को झेलना सिखाता है। अगर तुम प्रकृति के नियमों से उपजे प्रभावों को झेल पाते हो, तो तुम सच्चे कर्म संन्यासी हो।

कर्म और पूर्ण संन्यास का प्रश्न वही है जिसे अर्जुन ने श्रीकृष्ण के सामने आज से पाँच हजार साल पहले रखा था। संसार में रहते हुए, कर्मों में संलग्न रहते हुए भी कोई आध्यात्मिक मार्ग में आगे कैसे बढ़ सकता है? सद्गृहस्थ के रूप में तुम आध्यात्मिक विकास और उन्नति चाहते हो। लेकिन तुम अपने जीवन में ऐसी बाधाओं और समस्याओं का सामना करते हो, जो आध्यात्मिक मार्ग से विचलित

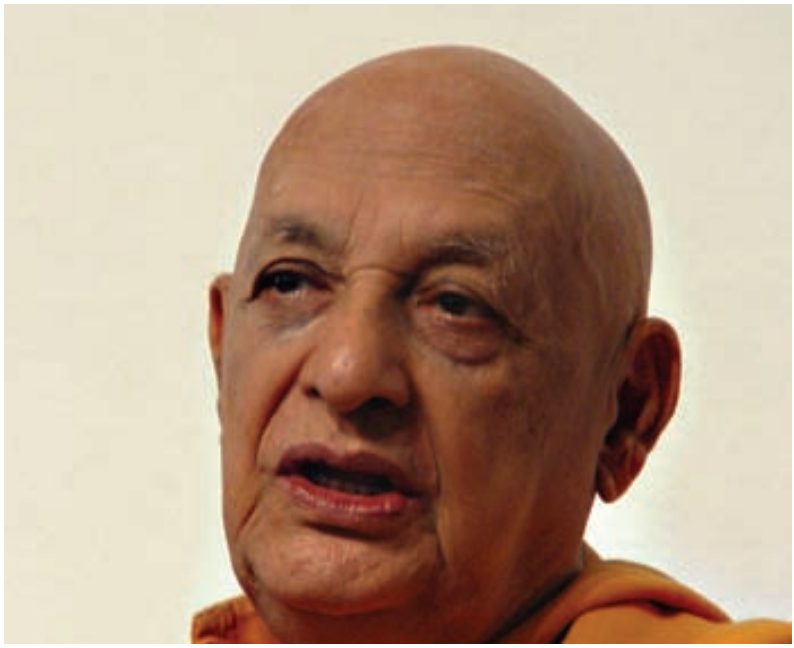

कर देती हैं। कौन-सी समस्याओं का आए-दिन सामना करते हो? जिम्मेदारी समस्या नहीं है। दायित्व समस्या नहीं है। काम-धंधा समस्या नहीं है। न ही पति, पत्नी या बच्चे समस्या हैं। आखिर वह कौन-सी समस्या है जिसे तुम जीवन में अनुभव करते हो?

समस्या उन कर्मों से नहीं होती, जिन्हें तुम रोज करते हो। समस्या होती है उन कर्मों के प्रभाव से। हर कर्म तुम्हारे ऊपर एक साइड-इफेक्ट छोड़ जाता है। किसी सगे-सम्बन्धी या प्रियजन की मृत्यु हो जाती है। यह तुम्हारे ऊपर ऐसा असर छोड़ जाती है, जो हटाये नहीं हटता। तुम्हारी नौकरी चली जाती है। तुम पर जबरदस्त असर होता है। तुम चिन्ता, तनाव और परेशानी से घिर जाते हो। ऐसी हजारों-लाखों परिस्थितियाँ घटती हैं जो अपना असर छोड़ते जाती हैं। तुम अपने कर्मों के इन प्रभावों को कैसे सम्भालोगे? कर्म संन्यासी को इसी के बारे में सोचना चाहिए। उसे प्रतिरोधक क्षमता का विकास करना चाहिए ताकि वह कर्मों के दुष्प्रभावों को आसानी से झेल सके।

पूर्ण संन्यासी के लिए बात दूसरी है, क्योंकि वह कर्म का परित्याग कर देता है। वह बिना किसी जिम्मेदारी या दायित्व के जीता है। वह किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं। उसका एकमात्र दायित्व आंतरिक सजगता का विकास है। इसके लिए वह चाहे किसी आश्रम में रहे या परिव्राजक के रूप में या कहीं एकान्तवास में। जैसा

उसके गुरु का आदेश हो। पूर्ण संन्यास निवृत्ति का संकीर्ण पथ है। यह केवल उन गिने-चुने साधकों के लिए है, जो अपने जीवन को ईश्वर का माध्यम बनाकर जी सकते हैं। कर्म संन्यास प्रवृत्ति का विस्तृत मार्ग है, जो जनसाधारण के लिए है, जिसपर चलकर वे भी अपना विकास और उत्थान कर सकें।

प्रवृत्ति और निवृत्ति के इन दो मार्गों को अच्छी तरह समझने के लिए भगवद्गीता का अध्ययन करना चाहिए। अठारह अध्यायों की इस यात्रा में जीवन का पूरा ब्लूप्रिंट क्रमबद्ध तरीके से उद्घाटित होता जाता है और यह शिक्षा मिलती है कि हम किस प्रकार कीचड़ में खिले कमल की तरह आदर्श कर्म संन्यासी का जीवन व्यतीत कर सकते हैं। कमल कीचड़ में पैदा होता है, उसी में रहता है और वहीं मुरझा जाता है, लेकिन वह हमेशा कीचड़ से अप्रभावित रहता है। अपनी सुन्दरता और निर्मलता से सभी को आनन्द प्रदान करता है। पूर्ण संन्यास एक आदर्श है, जीवन का ऐसा पड़ाव जहाँ पर मनुष्य तब पहुँचता है जब मन पर कर्मों के प्रभाव की पकड़ ढीली हो जाती है, जब वह स्वयं को राग-द्वेष के चंगुल से मुक्त करने में सफल हो जाता है।

राग और द्वेष ही मनुष्य को सुख और दु:ख के बीच झुलाते रहते हैं। जब मनुष्य में वैराग्य का उदय होता है तब उसमें कर्म के प्रभावों को झेलने की समझ और क्षमता विकसित होती है। कर्म संन्यास संसार में एक अलग दृष्टिकोण अपनाकर जीवन जीने का ढंग है, और पूर्ण संन्यास ईश्वरेच्छा की अभिव्यक्ति के रूप में जीवन जीने की कला है।

रिखियापीठ, 18 फरवरी 2009

कल्पतरु की छाँव में

हिंसा और अहिंसा के बीच रेखा कैसे खींची जा सकती है? घर में चूहे को मारते हैं, मच्छर के लिये क्वाइल जलाते हैं। क्या यह हिंसा है या नहीं?

इसका सीधा जवाब है। यह हिंसा नहीं है। जो जीव आततायी होते हैं, चाहे मनुष्य हो या पशु या पक्षी, उनको मारने में कोई हर्ज नहीं। आततायी का मतलब भी बड़ा स्पष्ट है – वह जो दूसरे को बिना किसी शुभ प्रयोजन के आतंकित करता है। हम तुम्हारा उपयोग करते हैं, ठीक है, नौकरी करवाते हैं, पर जब हम तुम्हें परेशान या भयभीत करने के लिये कोई दु:ख देते हैं, तब हम आततायी कहलाते हैं। सामान्यतया मनुष्य को तुम आततायी नहीं कह सकते। मनुष्य के लिए अगर तुम बड़े-से-बड़ा शब्द कहना चाहो तो कोलोनाइज़र या साम्राज्यवादी कहो। मनुष्य ने इस सृष्टि में पशुओं की कॉलोनी को हथियाया जरूर है, मगर सामान्य रूप से उसे आततायी नहीं कहा जा सकता।

हमारे पुराणों में, शास्त्रों में अनेक जगह यह चर्चा हुई है कि जीव को मारने से हत्या होती है या नहीं। महाभारत में भी इस विषय पर बहुत लिखा है। वहाँ कहा है, *जीव: जीवस्य भोजनम्*। जीव ही जीव का भोजन है। मुर्गी भी जीव है, बकरी भी जीव है, मेंढक भी जीव है, सर्प भी जीव है, चूहा भी जीव है, दीमक भी जीव है, ये एक-दूसरे पर आश्रित रहते हैं। साँप चूहे को खाता है, वह उसका भोजन है। अगर दुनिया में सब साँप मर जायेंगे तो चूहे बहुत बढ़ जायेंगे। इसलिए प्रकृति ने संतुलन के लिये हिंसा की अनुमति दी है। इसमें पाप-पुण्य का विचार लाना ही नहीं है।

हिंसा और अहिंसा, ये दोनों सृष्टि में सन्तुलन बनाये रखने के नियम हैं। यदि इन दोनों में से किसी एक को तुम अधिक महत्त्व दोगे तो सृष्टि का संतुलन टूट जायेगा। बौद्ध और जैन धर्म ने अहिंसा को अत्यधिक महत्त्व दिया, देख लो हिन्दुस्तान की क्या हालत है आज। मुगल लोग धड़ाधड़ आये अपनी तोपें लेकर, हिन्दुस्तान मार खा गया। तब जाकर शिवाजी ने पुर्तगाली लोगों को पकड़कर तोपें लीं और मुगलों का सामना किया। बोलो अहिंसा से फायदा हुआ क्या? हिंसा तो दुनिया में हर जगह हो रही है। अफ्रीका में हिंसा हो रही है, एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों को मार रहे हैं। सर्बिया और बोसनिया में ईसाइयों और मुसलमानों के बीच हिंसा हो रही है। इज़राइल में यहूदियों और मुसलमानों में लड़ाई-झगड़ा चल रहा है। जहाँ तक मच्छरों को मारने का सवाल है, हाँ, क्वाइल जलाना भी ठीक है। इस पर ज्यादा सोचना नहीं चाहिये।

क्या इस धरती पर सबको जीने का बराबर हक नहीं है?

यह आदर्शवाद की बात कह रहे हो। जीवन में दो बातें होती हैं, एक आदर्श, दूसरी यथार्थ। आदर्श उसे कहते हैं जो बहुत अच्छा लगता है, जो होना चाहिये। आदर्श

तो यही है कि किसी को मत मारो। तुम्हारे घर में चोर आ जाए तो अपना बटुआ भी उसे दे दो। कोई तुम्हें बायें गाल पर चाँटा मारे तो दाहिना भी दिखा दो। कोई तुम्हारा कोट माँगे तो उसको पतलून भी दे दो। यह आदर्श है। पर इस आदर्श को जीवन में उतारने की हिम्मत है? कोई तुम्हारा बटुआ ले जाए और तुम कहो मेरे गहनों की पिटारी भी लेते जाओ, किसी की हिम्मत है ऐसा करने की? तो फिर बोलते क्यों हो? जो व्यावहारिक है ही नहीं उसे कैसे करोगे? आज मानव-अधिकार की जो बात चल रह रही है दुनियाभर में, वह आदर्श है, यथार्थ नहीं।

आज पाश्चात्य सभ्यता दुनिया पर राज कर रही है। राज का तात्पर्य केवल राजनीति से नहीं, हर क्षेत्र में उन्हीं का डंका बजता है। चिकित्सा प्रणाली उनकी है, पूरी शिक्षा व्यवस्था उनकी है, रसोई की प्रणाली उनकी है, पूरा का पूरा इन्जीनियरिंग उनका है। जीव विज्ञान, शरीर विज्ञान, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, हर तरह का विज्ञान पश्चिम से आया है। हिन्दुस्तान के पास भी वैज्ञानिक विद्या थी, चीन के पास भी औषधि विद्या थी, परन्तु इन छोटी-छोटी बातों में ये मर गये कि चोर को मारें या न मारें, मच्छर को मारें या न मारें। इसी में ही महात्माओं ने सबका दिमाग खोखला कर दिया।

तुम किसी भी जाति का इतिहास ले लो, वाइकिंग्स का ले लो, मुगलों का ले लो, चंगेज खाँ का ले लो, वह इतिहास यही कहता है कि विजय की पिपासा सब में है। मेरा घर तुम्हारे घर से बढ़िया हो। जो जाति इस पिपासा को त्याग देती है, वह मर जाती है, नष्ट हो जाती है। किसी जमाने में हिन्दू जाति अफगानिस्तान, काराकोरम, बर्मा, जावा, थाईलैण्ड, कम्पूचिया, बाली, सुमात्रा, कहाँ-कहाँ नहीं फैली हुई थी। आज भी इण्डोनेशिया में लोगों के नाम संस्कृत पर आधारित हैं। कालान्तर में जैन और बौद्ध विचारधारा के हिंसा-अहिंसा के मामले को लेकर, ब्राह्मण लोगों के छूआछूत के मामले को लेकर, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की संकीर्ण दृष्टि को लेकर यह देश बहुत कमजोर हो गया। तीन जातियाँ एक तरफ, एक जाति दूसरी तरफ। औरतों का तो हिन्दुस्तान में पैरालिसिस है। यहाँ अधिकांश औरतें बेकार हैं। खाली रोटी-दाल बनाती हैं, कपड़े धोती हैं, इस्त्री करती हैं। समाज और राष्ट्र के लिए उनका योगदान क्या है? कौन-सी वैज्ञानिक उपलब्धि प्राप्त की है उन्होंने? उनमें से कोई मैडम क्यूरी निकली है?

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि इन सब चीजों की वजह से हिन्दुस्तान राजनैतिक रूप से इतना कमजोर हो गया कि उत्तर-पश्चिम से आये लोगों ने फटाफट इनको पीटना शुरू कर दिया। सामना नहीं कर पाये। छूआछूत की वजह से ये कमजोर हो गये। पिछड़ी जातियों के लोग ईसाई बन गये, मुसलमान बन गये। जब-जब विदेशी शक्तियाँ आयीं सबसे पहले इनपर ही हाथ डाला है। बौद्धों ने इन्हीं को बौद्ध बनाया, जैनों ने इन्हीं को जैन बनाया, मुसलमानों ने इन्हीं को मुसलमान

बनाया, ईसाइयों ने इन्हीं को ईसाई बनाया। आज की राजनैतिक व्यवस्था भी इन्हीं को घेरे हुए है।

रिखियापीठ, 16 अक्टूबर 1997

कहते हैं जर्रे-जर्रे में खुदा है, कण-कण में भगवान है। तो जो लोग सगुण ब्रह्म में विश्वास करते हैं, क्या वे चप्पल-जूता-झाड़ू जैसी चीजों को भी देवी-देवता मान सकते हैं?

हाँ, हमने तो अपने गुरुजी की चप्पल रखी है। झाड़ू भी रख सकते हैं। भगवान निराकार है, यह कह तो दिया बड़े आराम से, मगर उसका अनुभव कैसे करोगे? क्या सोचोगे, क्या देखोगे, किसकी पूजा करोगे? निराकार भगवान को जब यह समस्या पता चली कि ये लोग निराकार-निराकार कहते तो हैं, पर कुछ कर नहीं पा रहे हैं, इन्हें बहुत मुश्किल हो रही है, तब भगवान को बहुत दया आई। उन्होंने भगवती से कहा कि यह तो बड़ी समस्या हो गयी, ये लोग तो केवल भगवान-भगवान बोलते जा रहे हैं, मगर इनकी खोपड़ी में तो कुछ आ ही नहीं रहा है। देवी ने कहा, 'देखो ऐसा करते हैं कि हम-तुम दोनों वहाँ जाकर लोगों के लिए थोड़ा वीडियो-कैसेट बना आते हैं।' वे दोनों उतर गये रूप बदल कर। भगवान बने राम और भगवती बनीं सीता, एक बने कृष्ण और दूसरी बनीं राधा, एक बने शिव और दूसरी बनीं गिरिजा।

केसव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी।
माया महा ठगिनी हम जानी॥

दोनों आ गये, नाटक किया, अच्छे से लीला की, ताकि तुम लोगों को उपयुक्त लगे। आखिर जो भी फिल्म बनाओ वह दर्शकों को उपयुक्त लगनी चाहिये न? कृष्ण आये, उन्होंने उस जमाने के मुताबिक भूमिका अदा की। राम ने अपने समय के मुताबिक काम किया। आप लोगों ने देखा कि हाँ, यह व्यक्ति बहुत अच्छा है, अवतारी पुरुष है। उसी भगवान का चिन्तन करते-करते, रामजी, सीताजी या शिवजी की पूजा करते-करते मन धीरे-धीरे साफ होने लगा, शुद्ध होने लगा, शून्य होने लगा, स्पष्ट होने लगा। जब अंदर का आईना साफ होने लगा, तब निराकार दिखाई देने लगा। आखिर निराकार को देखने के लिये भी आँखें चाहिये। मगर वे आँखें तो तुम्हारे पास हैं ही नहीं, किसी के पास नहीं हैं। तुमने कह दिया कि पानी में कीटाणु हैं, मगर कहाँ हैं, मुझे दिखाई नहीं दिये। पहले सूक्ष्मदर्शी लाना पड़ेगा, उससे देखना होगा। जिस तरह से सूक्ष्मदर्शी द्वारा कीटाणु-जीवाणु दिखाई देते हैं, उसी तरह से निराकार ईश्वर के अनुभव के लिये ज्ञान चक्षु की आवश्यकता है।

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि हर एक आदमी को मोतियाबिंद है, दृष्टि दोष है, इसलिए तुमको कुछ दिखाई तो देगा नहीं। और तुमने बोल दिया कि कुछ है ही नहीं। पहले मोतियाबिंद को निकालो। वह कैसे निकलेगा? सबसे पहले है गुरु और गुरु से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, गुरुपद रज माने गुरु के पैरों की धूल। उससे आँखों का दोष ठीक हो जाता है, जिससे फिर निराकार प्रभु को भी देखा जा सकता है।

हमारे यहाँ मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, सनक, सनन्दन, सनत कुमार और शुकदेव जैसे अनेक ऋषि-मुनियों का वर्णन आता है, जिनके पास यह ज्ञान दृष्टि थी। शुकदेव तो ब्रह्मर्षि थे, व्यासदेव जी के बेटे थे, पाँच साल की उम्र में ही घर छोड़कर चले गये थे, कपड़े तक नहीं पहने थे। ऐसे थे शुकदेव जी, एकदम निराकार ब्रह्म

का अनुभव करने वाले। पर उन्होंने लोगों को क्या सिखाया? कृष्ण भक्ति। श्रीमद् भागवत तो शुकदेव ने सुनाया है न? सवाल उठता है कि जब तुम्हें निर्गुण विज्ञान की डिग्री मिल चुकी है, जब तुम निर्गुण विज्ञान के प्रोफेसर हो तब फिर यह सगुण विज्ञान क्यों सिखा रहे हो?

तुम तो पी.एच.डी. कर चुके हो, लेकिन अगर तुम्हें सातवीं कक्षा के विद्यार्थी को पढ़ाना पड़े तो उसके स्तर से सिखाना शुरू करोगे न? सिखाने वाले को अपने ज्ञान के मुताबिक नहीं बल्कि विद्यार्थी की योग्यता के अनुसार सिखाना पड़ता है। हाँ, शुकदेव तो ब्रह्मज्ञानी थे, उन्हें ब्रह्मज्ञान की डिग्री प्राप्त थी, पर उन्होंने लोगों को कृष्ण भक्ति सिखाई। जो आदमी अक्ल का लंगड़ा है, वह कृष्ण भक्ति के अलावा क्या सीख सकता है? तेरी माँ नहीं, तेरा बाप नहीं, तेरी पत्नी नहीं, तेरा बेटा नहीं, तेरा जन्म नहीं, तेरी जात नहीं, यह सिखायेंगे क्या? जो जिसके योग्य है, उसे वही सिखाया जाता है। सगुण उपासना निर्गुण परमात्मा को पाने का सूत्र है, धागा है, जिसे पकड़कर धीर-धीरे आगे बढ़ना पड़ता है।

तुलसीदास जी ने तो स्पष्ट रूप से कहा है कि निराकार की जयमाला लेकर क्यों बैठे हो, केवल साकार में रहो। उन्होंने तो यह भी कह दिया कि निराकार बहुत सहज है, सुलभ है, क्योंकि उसमें पूछना ही क्या। दुर्लभ तो साकार है। जैसे ही तुम साकार की बात कहते हो, लोग सौ-सौ बातें पूछते हैं, जबकि निराकार के बारे में कहने से सब चुप हो जाते हैं। निराकार तो एकदम सहज है। दुष्कर तो साकार है, क्योंकि साकार को समझना मुश्किल है, इस पर विश्वास करना मुश्किल है। शिव जी की धर्मपत्नी को श्रीराम के अवतार होने पर सन्देह उत्पन्न हो गया था। बताओ, जब सती को सन्देह हो गया, तब तुम और हम किस खेत की मूली हैं! शिवजी के समझाने पर भी वे रामजी की परीक्षा लेने गईं। शंका सबको होती है, इसलिये साकार महाकठिन है। जो भी हो, उपासना साकार से ही शुरू हो और साकार की उपासना करते समय एक बात का ख्याल रखना चाहिये, श्रद्धा और विश्वास।

कई लोग देवीजी, शिवजी, रामजी, सबकी पूजा करते हैं। यह ठीक है क्या?

क्या फर्क पड़ता है? किसी दिन रसगुल्ला खा लेना, किसी दिन पेड़ा खा लेना, किसी दिन चमचम खा लेना, किसी दिन दही खा लेना, किसी दिन खीर खा लेना, किसी दिन कुछ न हो तो दूध ही पी लेना। बात तो एक ही है। राम कहो या रहीम कहो, सोप कहो या साबुन कहो, पानी कहो या वॉटर कहो, मतलब तो एक ही चीज से है, उसमें कोई फर्क नहीं है।

हमारा भी यही सिद्धान्त है। हम वैदिक धर्म को मानने वाले हैं। हमारे इष्ट देव भी हैं, और इष्ट मंत्र भी। हम इस बात को मानते हैं कि ईश्वर के जितने भी रूप हैं, वे सब एक ही तत्त्व की अलग-अलग व्यक्तिगत अभिव्यक्तियाँ हैं। ईश्वर सब रूपों

में हमें अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। समय-समय पर भगवान भक्तों के लिये जन्म लेते हैं, ताकि भक्त लोग उनकी लीला का श्रवण करें, उन्हें याद करें। यह सन्देह कभी मन में आना ही नहीं चाहिये कि देवी-देवता अनेक क्यों होते हैं। ऐसा कभी मत सोचना कि बल्ब अनेक हैं तो इसका मतलब बिजली भी अनेक तरह की हैं, राष्ट्र अनेक हैं तो पृथ्वी भी अनेक हैं। नहीं, आकाश एक है, पृथ्वी एक है, ब्रह्माण्ड एक है और ईश्वर एक है। मगर यह एकता अनेकों की सम्पूर्णता को कहते हैं। यह 'एक' केवल एक नहीं, अनेकों का एक है। अनंतता ही अंतिम एकता है।

पुरुष-प्रकृति, शिव-शक्ति, स्त्री-पुरुष, पॉज़िटिव-नेगेटिव, ये दो तत्त्व हैं या नहीं?

हाँ, जरूर दो हैं। हम भी दो हैं। दायें पुरुष, बायें प्रकृति। तुम भी दो हो, सब दो हैं। वेदों में तो तीन लिखा है। वेद कहते हैं, ईश्वर, जीव और जगत्। एक ईश्वर, दूसरा जगत्, जो उसने बनाया है, और तीसरा जीव, जो दोनों का अनुभव करता है। यह त्रैतवाद है, और यही हमको दिखता है। जगत् का मतलब है सृष्टि, जो दिखती भी है, और नहीं भी दिखती। जितनी दिखती है, उतनी ही ठीक है हम लोगों के लिये। हम जीव हैं जो ईश्वर का भी अनुभव करते हैं और जगत् का भी। बहुत-से जीव जगत् की तरफ जाते हैं, कुछ ईश्वर या आत्मा की तरफ जाते हैं।

यह भावना कि ईश्वर एक है तो देवी का कोई स्थान नहीं, या देवी श्रेष्ठ है तो ईश्वर का कोई स्थान नहीं, सही नहीं है। इस बात को हमेशा याद रखो कि श्रीमद् देवीभागवत में लिखा हुआ है कि आद्या शक्ति मूलशक्ति है। उसी से ब्रह्मा, विष्णु और महेश का जन्म हुआ है। इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञान शक्ति, देवी की ये तीन शक्तियाँ मानी जाती हैं। मगर इसका मतलब यह नहीं कि देवी एक, दो या तीन हैं। तुम्हारे अन्दर बुद्धि है कि नहीं? यह तुम्हारे अन्दर एक शक्ति है। तुम पहलवान हो तो वह भी तुम्हारी एक शक्ति है। शक्ति ईश्वर से अभिन्न है, और साथ ही यह ईश्वर से भिन्न भी मानी जाती है। इसको द्वैत भी मान सकते हो और अद्वैत भी। यह एक भी है और अनेक भी। कोई फर्क नहीं पड़ता।

लगभग पचास वर्ष पहले वैज्ञानिकों द्वारा अणुओं-परमाणुओं पर प्रयोग किया गया। इस प्रयोग का निष्कर्ष यह निकला कि अणु पूरे सौरमण्डल का एक लघु प्रतीक होता है। जैसे सौरमण्डल में ग्रह-उपग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं, वैसे ही अणु में इलेक्ट्रान न्यूक्लियस के चारों तरफ घूमते हैं। देखा जाए तो बृहत् ब्रह्माण्ड और सूक्ष्म ब्रह्माण्ड में कोई अंतर नहीं है। अंतर सिर्फ इतना है कि सूक्ष्म ब्रह्माण्ड अचिन्त्य है, आँखों से दिखाई नहीं देता, जबकि बृहत् ब्रह्माण्ड को हम देख सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं, हजारों-लाखों किलोमीटर के पैमाने पर माप भी सकते हैं।

इस सिद्धान्त को कहते हैं – *यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे*। सूर्य-चन्द्रमा, तारे, उसके परे आकाश गंगा, उसके परे लाखों-करोड़ों सूर्य, इन सबको कहते हैं ब्रह्माण्ड, माने बड़ी दुनिया। पिण्ड का मतलब छोटी दुनिया। मनुष्य के शरीर या किसी कीट-पतंग के शरीर या पत्थर या वनस्पति के किसी कण को तुम वैज्ञानिक ढंग से देखो। तुम देखोगे कि जो वहाँ हो रहा है, वह यहाँ भी हो रहा है।

हम लोगों के यहाँ विराट् और हिरण्यगर्भ, ये दो शब्द आते हैं। विराट् उसे कहते हैं जो दिख सके, और हिरण्यगर्भ वह है जो दिखाई नहीं देता। सारी सृष्टि को हमारे ऋषि-मुनियों ने विराट और हिरण्यगर्भ, इन दो रूपों में देखा। विराट् स्थूल है, हिरण्यगर्भ सूक्ष्म। वह सारी सृष्टि जो इंद्रियों द्वारा अनुभव की जा सके, उसे विराट् कहते हैं, और वह रचना जिसे इंद्रियों द्वारा अनुभव न किया जा सके, वह हिरण्यगर्भ कहलाती है।

इन चीजों की जानकारी होनी चाहिये, क्योंकि मनुष्य का जन्म केवल भोग के लिये नहीं, ज्ञान के लिये हुआ है। भोग भी योग के लिए होना चाहिये। अगर तुम भोग भोगते हो, अगर तुम्हारा अच्छा घर है, अच्छी बीवी है, अच्छे बच्चे हैं, अच्छे माता-पिता हैं, रुपया-पैसा है, मोटरकार है, तो उसका प्रयोजन ज्ञान होना चाहिये, मौज नहीं।

रिखियापीठ, 25 अक्टूबर 1997

सत्यम्! चिरंजीव रहो!

सन् 1954 में श्री स्वामीजी के जन्मदिवस पर प्रयाग के श्री महेन्द्र के उद्गार

सत्यम्!
ओ दिव्य जीवन के कलाकार!
आज के शुभ दिन तुम इस जग में आये थे
तुम हो सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् के प्रतीक,
कर्म और शान्ति के अवतार,
भाषा, साहित्य और धर्म के प्राण,
महाप्राण गुरुदेव के तुम देवदूत,
तुम धन्य हो!
चिरंजीव रहो, और चिरन्तन युगों तक
अपनी कठोर तपस्या की शक्ति से,
पवित्र साधना की दीप्ति से,
विशाल ज्ञान के भण्डार से
अखिल विश्व का विशाल पथ
ज्योतित करते रहो!

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

रिखियापीठ सत्संग 4

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पृष्ठ 86, ISBN: 978-93-81620-49-6

यह पुस्तक श्री स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा रिखियापीठ में 2005 से 2009 के बीच दिये गये प्रबोधक सत्संगों का संकलन है, जिनमें उन्होंने रिखिया के विकास, यज्ञ परम्परा, यौगिक सिद्धान्तों, बच्चों की शिक्षा, क्रिया योग, गीता की शिक्षा, ईसा मसीह, अपने जन्म, गुरु-शिष्य सम्बन्ध, पुरषार्थ और प्रारब्ध जैसे अनेक प्रासंगिक विषयों पर अपना मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया है। श्री स्वामीजी के व्यावहारिक तथा प्रेरक विचार, जीवन में प्रकाश खोजते सभी जिज्ञासुओं को एक नयी दिशा और ऊर्जा प्रदान करते हैं।

नया प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

कृपया जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, जिसके बिना आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.net

इस वेबसाइट पर प्रतिदिन श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का विभिन्न आध्यात्मिक विषयों पर एक नया सत्संग उपलब्ध रहता है।

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका के लेखों के संग्रह तथा पूरे विश्व में सत्यानन्द योग केन्द्रों और शिक्षकों के सम्पर्क सूत्रों और गतिविधियों की जानकारी के लिए इस वेबसाइट को देखें।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India Under No. HR/FBD/298/13-15
- Registered with the Registrar of Newspapers, India Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

गंगादर्शन के सत्र एवं कार्यक्रम 2014

जनवरी 1	श्री हनुमान चालीसा
फरवरी 1-4	श्री यंत्र आराधना
फरवरी 1-मई 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (हिन्दी)
फरवरी 4	बसंत पंचमी महोत्सव
	बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 14	बाल योग दिवस
मार्च 1-21	योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र (हिन्दी)
मार्च 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र-दमा (हिन्दी)
अप्रैल 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र-मधुमेह (हिन्दी)
जून 1- जुलाई 25	द्विमासिक योग विज्ञान एवं जीवनशैली परिचय सत्र (हिन्दी)
जुलाई 12	गुरु पादुका पूजन
अगस्त 2014-मई 2015	योग अध्ययन में डिप्लोमा (अँग्रेजी)
अगस्त 1-21	योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र (अँग्रेजी)
अगस्त 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र-गठिया एवं पीठदर्द (हिन्दी)
सितम्बर 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र-सामान्य (हिन्दी)
सितम्बर 8	स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव
सितम्बर 12	स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस
अक्टूबर 1- जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अँग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्म दिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक माह के 5 वें और 6 वें दिवस	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक माह के 12 वें दिवस	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।